रास्ता इधर है......



सपादक मडल

☐ डा भीष्म साहनी
☐ शमशेर बहादुर सिंह
☐ राजीव सक्सेना
☐ डा विश्वनाथ त्रिपाठी
☐ केवल गोस्वामी
☐ राजकुमार सैनी
☐ श्याम कश्यप

चयन एव सयोजन

☐ केवल गोस्वामी
☐ राजकुमार सैनी
☐ श्याम कश्यप

राष्ट्रीय प्रगतिशील लेखक महासघ का प्रकाशन
नयी दिल्ली

रास्ता इधर है......

[विभिन्न कालखंडों के प्रमुख प्रगतिशील कवियों की प्रतिनिधि कविताएं]



दिसम्बर, १९७८
प्रथम संस्करण

मूल्य साधारण संस्करण ५ रु एवं सजिल्द ८ रु मात्र

प्रकाशक
राष्ट्रीय प्रगतिशील लेखक महासंघ

मुद्रक
यू एज प्रिंटिंग प्रेस, रानी झांसी रोड, नयी दिल्ली ५५

आवरण
☐ सुरेन्द्र राजन

प्रमुख वितरक
पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस,
रानी झांसी रोड नयी दिल्ली ५५

AN ANTHOLOGY OF POEMS ☐ RASTA IDHAR HAI
भीष्म साहनी द्वारा राष्ट्रीय प्रगतिशील लेखक महासंघ की ओर से
यू एज प्रिंटिंग प्रेस से मुद्रित एवं प्रकाशित।

अनुक्रम

☐ पहला खंड (समारम्भ)

☐☐ दूसरा खंड (विकास)

□□□ तीसरा खंड (स्वरूपान्तर)

□□□□ चौथा खंड (गुणान्तर-१)

□□□□□ पाचवां खड (गुणा तर-२)

और अन्त मे

यह संकलन

संग्रह को 'रास्ता इधर है' का नाम दिया गया है। यह कौन सा रास्ता है और किस दिशा मे जाने वाला रास्ता है? आज के जमाने मे कौन छाती पर हाथ रखकर कह सकता है कि इस रास्ते पर चलोगे तो अपनी मंजिल तक पहुंच जाओगे। आज कल रास्ते भी बहुत हैं और रास्ता दिखाने वाले भी बहुत हैं और कौन जाने, रास्ता दिखाने वालो के सामने मंजिलें भी अलग-अलग हैं फिर क्या इस संग्रह का शीर्षक किसी छिपे दंभ को व्यक्त नहीं करता?

'रास्ता इधर है' शब्द किसी कवि की कलम से निकले शब्द हैं, जिसके दिल की तड़प, अपने बाहर की किसी व्यापक तड़प से मिलकर उस रास्ते का भास पाती है जिस पर चलना उसके लिए अनिवार्य सा हो चला है। यों तो यह रास्ता नया नही है और केवल आज का भी नही है। सहस्रों शताब्दियो से, जब से इंसान ने इतिहास में कदम रखा है वह अपनी मुक्ति के लिए, अपने अस्तित्व को सार्थक बना पाने के लिए, अपने समाज मे से अन्याय और असमानता को दूर कर पाने के लिए इसी रास्ते पर चलता आया है। और इसी रास्ते का संकेत कवि बार बार करता रहा है। यह रास्ता जीवन की कोख मे से ही निकलता है, उस संघर्ष की कोख में से जिसमे इंसान एक बेहतर संसार की सृष्टि कर पाने के लिए जूझता है। इस तरह यह रास्ता उस संघर्षमय जीवन का ही रास्ता है जिसमे आज हमारे देश के लाखो करोडो अपहृत लोग जूझ रहे हैं, उन्हीं का रास्ता कवि का रास्ता है, उन्ही की पदचाप कवि की

कविताओं में गूंजती है, उसी से वह उत्प्रेरित और अनुप्राणित होता है, वही उसकी कविता का सम्बल बनती है और वही उसका पथ निर्देश भी करती है।

आज की विषमताओं का विकराल रूप किसी से छिपा नहीं है। जहां हरिजनों को जिंदा जलाया जाये या नदी में जिंदा डुबो दिया जाये, जहां लाखों लाख बेरोजगार शहरों और कस्बों की सड़कों पर घूमें, जहां सूखा और बाढ़, हर साल किसी महामारी की तरह आयें, और उनके सामने बस्तियां और गांव उजड़ते चले जायें, जहां काला धन इतना प्रबल हो उठे कि देश की सरकार भी उसके सामने खम खाये, और उधर, बड़े-बड़े शहरों में गगनचुम्बी भवन और इमारतें उठ रही हों, और सड़कों पर बढ़िया से बढ़िया कारें घूमती फिरें, तो कोई भी संवेदनशील कवि इनसे अछूता नहीं रह सकता। अगर वह उन विषमताओं की बात करता है जो आस-पास के जीवन में उसके लिए असह्य हो उठी हैं, और अपना दर्द वह आपके साथ बांटना चाहता है तो वह सचमुच आपके प्रति अपना कर्तव्य निभा रहा है, आपके प्रति भी और अपनी कला के प्रति भी।

इस संग्रह में हमारे हिन्दी जगत के जाने माने कवियों की हाल की लिखी कुछ कविताएं संग्रहीत हैं। यह पुस्तक एक और बात की ओर भी हमारा ध्यान दिलाती है, कि देश के राजनीतिक जीवन की उठक-पटक में प्रगतिशील कवि की नजर अपनी कला के प्रति तथा जन जीवन के प्रति धुंधलायी नहीं है, उसकी नजर बराबर इस वर्गगत समाज के भीतर पाये जाने वाले अन्तर्द्वन्द्वों, और संघर्ष के प्रति लगी रही है और उसी को वह निष्ठा के साथ आंकता रहा है, उसे वाणी देता रहा है।

बहुत दिन के बाद प्रगतिशील लेखक संघ की ओर से ऐसा एक प्रयास किया जा रहा है। पाठकों तथा बुद्धिजीवियों ने इस प्रयास का स्वागत किया है, यह इस बात से भी जाहिर हो जाता है कि छपने से पहले ही हमारे पास सैंकड़ों प्रतियों के लिए आर्डर पहुंच चुके हैं। हमें पूर्ण आशा है कि इस प्रकार के प्रयास भविष्य में भी सम्भव होंगे, और कविगण से उनका अमूल्य सहयोग मिलता रहेगा। एक दूसरे को समझने, अपनी भूमिका को पहचानने और मिलकर उस सांझे दायित्व को निभा पाने की दिशा में, इस प्रकार के प्रयास एक शक्तिशाली मंच का काम दे सकते हैं।

□ भीष्म साहनी

महासचिव,

राष्ट्रीय प्रगतिशील लेखक महासंघ

□ निराला

जल्द जल्द पैर बढ़ाओ, आओ, आओ !
आज अमीरों की हवेली किसानों की होगी पाठशाला,
धोबी, पासी, चमार, तेली खोलेंगे अन्धेरे का ताला,
एक पाठ पढ़ेंगे, टाट बिछाओ !
यहाँ जहाँ सेठ जी बैठे थे बनिये की आख दिखाते हुए,
अनेक ऐंठाये ऐंठे ये धोखे पर धोखा खाते हुए,
बैंक किसानों का खुलाओ।
सारी सम्पत्ति देश की हो, सारी आपत्ति देश की बने,
जनता जातीय वश की हो, वाद से विवाद यह ठने,
काटा काटे से कढ़ाओ !

□ मुक्तिबोध

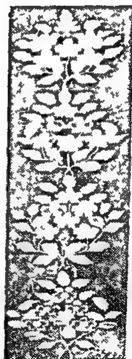
मुझ पर क्षुब्ध बारूदी धुएं की झार आती है
व उन पर प्यार आता है
कि जिनका तप्त मुख
सवला रहा है
धूम लहरों में
कि जो मानव भविष्यत्-युद्ध में रत हैं,
जगत् की स्याह सड़कों पर।
कि मैं अपनी अधूरी दीर्घ कविता में
सभी प्रश्नोत्तरी की तुग प्रतिमाए
गिरा कर तोड़ देता हू हथोड़े से
कि वे सब प्रश्न कृत्रिम और
उत्तर और भी छलमय,
समस्या एक—
मेरे सभ्य नगरों और ग्रामों में
सभी मानव
सुखी, सुन्दर व शोषण मुक्त
कब होंगे ?
कि मैं अपनी अधूरी दीर्घ कविता में
उमग कर,
जन्म लेना चाहता फिर से
कि व्यक्तित्वान्तरित होकर,
नये सिरे से समझना और जीना
चाहता हू, सच !!

□ पहला खंड

समारम्भ

[दिशा, दृष्टि और प्रस्थापन]

- □ केदारनाथ अग्रवाल
- □ त्रिलोचन
- □ नागार्जुन
- □ शमशेर बहादुर सिंह
- □ राजीव सक्सेना
- □ कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह
- □ विश्वनाथ त्रिपाठी
- □ मोहन श्रीवास्तव
- □ केदारनाथ सिंह



□ □ □ "कला के सम्बन्ध में पत्र में क्या लिखूँ ? उसके विकास और सौन्दर्य की बातें लाखों तरह की हैं—एक देखिए—

कोई न छायादार
पेड़, वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार,
श्याम तन, भर बँधा यौवन,
नत नयन, प्रिय कर्म रत मन
गुरु हथौड़ा हाथ, करती बार बार प्रहार—
सामने—तरु मालिका—अट्टालिका, प्राकार।

यहाँ सीधा वर्णन होने पर भी, हथौड़े की चोट पत्थर पर पड़ने पर भी, देखिए किस तरह अट्टालिका पर पड़ती है। लेखक के वर्णन—प्रकार के कारण और निर्देश से। वह जहाँ बैठी है वह पेड़ छायादार नहीं है और अट्टालिका तरु-मालिका है।—अट्टालिका भी तरुमालिका है, फिर आदमी कितनी छाँह में है!! "मैं तोड़ती पत्थर"—अंत का स्वभावतः समझ में आ जाएगा—"मैं तोड़ती पत्थर हृदय।"

□ सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

(जानकीवल्लभ शास्त्री को लिखे गए एक पत्र से)

□ □ □ " काव्य का उत्कर्ष केवल प्रेम भाव की कोमल व्यंजना में ही नहीं माना जा सकता जैसा कि टालस्टाय के अनुयायी या कुछ कलावादी कहते हैं। क्रोध आदि उग्र और प्रचंड भावों के विधान में भी, यदि उनकी तह में करुणा भाव अव्यक्त रूप में स्थित हों पूर्ण सौंदर्य का साक्षात्कार होता है। स्वतन्त्रता के उन्मत्त उपासक, घोर परिवर्तनवादी शैली के महाकाव्य The Revolt of Islam (द रिवाल्ट आफ इसलाम) के नायक नायिका अत्याचारियों के पास उपदेश देने वाले गिड़गिड़ाने वाले, अपनी साधुता, सहनशीलता और शांत वृत्ति का चमत्कारपूर्ण प्रदर्शन करने वाले नहीं हैं। वे उत्साह की उमंग में प्रचंड वेग से युद्ध क्षेत्र में बढ़ने वाले पाखंड, लोक पीड़ा और अत्याचार देख पुनीत क्रोध के सात्त्विक तेज से तमतमाने वाले, भय या स्वार्थवश अत्याचारियों की सेवा स्वीकार करने वालों के प्रति उपेक्षा प्रकट करने वाले हैं।'

□ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

कविता की जरूरत

□ केदारनाथ अग्रवाल

अंधेरा फाड़ कर
            रात को तिरोहित कर देने का काम नहीं
वरन्
    सृष्टि की समग्रता को
            धूप के पारदर्शी आइने में
                उजागर कर देने का काम भी
            सृजन करता है।
और ऐसे ही
        समय और साहसी सूरज को
—उसके ताप-दाप और प्रकाश के साथ—
        शब्दों में बिम्बित करने का सार्थक काम
            कविता करती है।
जो आदमी की बनायी हुई—
                उसी की सही पहचान होती है
    और उसी की
            सम्पृक्तता और सम्बद्धता का
                सारगर्भित मौलिक बयान होती है।
दिक् और काल काव्य भी जिसमें
                समाहित रहते हैं—
मानवीय निरंतरता में
प्रगल्भित और प्रवाहित रहते हैं
                इसीलिए तो
आदमी को कविता की जरूरत है
और कविता को
आदमी की जरूरत है।

(जनयुग)

सोच-समझ कर चलना होगा अगति नहीं जीवन लक्षण का

☐ त्रिलोचन

☐ १ ☐

परिवतन होते रहते है
उन्हे न रोक सका है कोई
परिवतन की शक्ति अतुल है
उसे न बाध सका है कोई
तुम परिवतन की गति समझो
तुम परिवतन को पहचानो।
तुम परिवतन को अपना कर
विश्व बना लो अपने मन का

☐ २ ☐

अब तक जो होता आया है
उसमे जन सम्मान नही है
उसमे मानव को मानव के
सुख दुख का कुछ ध्यान नही है
उससे व्यक्तिवाद पनपा है
उससे पूजीवाद हुआ है
इन्हे नष्ट कर शोषित मानव,
शाप काट दो जग जीवन का

☐ ३ ☐

अब कुछ ऐसी हवा चली है
जिससे सुप्त जगत जागा है
जिससे कम्पित जीण जगत ने
आज मरण का वर मागा है

उनको बहुत जल्द दफनाओ
नवयुग के जन आगे आओ
नव निर्माण करो तुम जग का
जीवन का, समाज का, मन का

□ ४ □

यह संक्रांति काल आया है
हम इसका कुछ लाभ उठाए
आज पुरानी निर्बलता की
जगह शक्ति नूतन बैठाए
आंख खोल, बन कर तटस्थ
निष्क्रिय दर्शन का समय नहीं है
आज हमारी एक-एक गति पर
निर्भर भविष्य जीवन का

□ ५ □

बिगुल बजाओ और बढ़ चलो
यह सम्मुख मैदान पड़ा है
मानवता के मुक्ति दूत तुम
कौन तुम्हारे साथ अड़ा है
यह संघर्ष-काल आया है
आई जय-यात्रा की बेला
तुम नूतन समाज के स्रष्टा
पग ध्वनि में गर्जन जीवन का

□ ६ □

जीवित मानव महिमा तुम से
तुम मानव जीवन के धर्ता
तुम मानव-जीवन के कर्त्ता
तुम मानव-जीवन के हर्ता
विपुल शक्तियों के निधान तुम
अपमानित जीते धरती पर
अपना शक्ति प्रकाश दिखा दो
क्षय कर अत्याचार अनय का
श्रमिक कृषक भोगो वह अमृत
जो फल है जीवन मंथन का।

मैं तुम्हें अपना चुम्बन दूंगा

□ नागार्जुन

तुम उनकी साजिशों को खत्म कर दोगे
तुम प्रवचना की उनकी कुटिल चालों का अन्त कर दोगे
हत्याएं करने-करवाने की—
चुपचाप जहर घोलन घुलवाने की—
कारागार की नाटकीय कोठरियों में
मानवता को गलाने गलवाने की—
यानि, उनकी एक एक साजिश को
तुम खत्म कर दोगे
हमेशा हमेशा के लिए !

मैं तुम्हारा ही पता लगाने के लिए
घूमता फिर रहा हू
सारा सारा दिन सारी-सारी रात !
आगामी युगा के मुक्ति-सैनिक कहा हो तुम ?
निपीडित शोषित मानवता के उद्धारक, कहां हो तुम ?
आओ, सामने आओ बेटे !
मैं तुम्हारा चुम्बन लूगा
मैं तुम्हे अपना चुम्बन दूगा

मैं तुम्हीं को अपनी यह शेष आस्था अर्पित करूगा
मै तुम्हारे ही लिए जियूगा, मरूगा
मैं तुम्हारे ही इर्दगिर्द रहना चाहूगा
मैं तुम्हारे ही प्रति अपनी वफादारी निबाहूगा
आओ, खेत मजदूर और भूमिदास नौजवान
आओ, खदान-श्रमिक और फैक्ट्री वर्कर नौजवान
आओ, कैम्पस के छात्र और फैकल्टियों के नवीन प्रवीण प्राध्यापक

हा, हा, तुम्हारे ही अन्दर तैयार हो रहे हैं
आगामी युगो के लिबरेटर

आओ भई, सामने आओ !
मैं तुम्हारा चुम्बन लूगा
मैं तुमम से एक एक का सिर सूघूगा
आओ भई सामने आओ !
मुझ पमलेट के साथ बातचीत करो
हसो खेलो मेरे साथ
मैं तुम्हारी जूतिया चमकाऊगा
दिल बहलाऊगा तुम्हारा
कुछ भी करूगा तुम्हारे लिए
मैं तुम्ह अपना चुम्बन दूगा

(उत्तरार्द्ध—६)

नज़रुल के लिए

☐ शमशेर बहादुर सिंह

—क्या देखते, जाने क्या सोचते
स्वत अनजाने ही
तीन देशो के एक साथ नागरिक
तीन दशो की विप्लवी
एकता मे यही
चित्त बसाये
हमारे लिए तीन
जो तुम्हारे लिए एक
मौन शांति दृष्टि से
क्या अवलोकन करते
जाने क्या अवलोकन करत
कौन सी कविता लिखत
किस नय नास्मिक विद्रोह, और
निर्माण की !
" आकाशे दामामा बाजे "
विद्रोही !
क्या अब भी दामामे बज रहे हैं
—और किस आकाश मे
किन किन धरतिया के ऊपर
मानव हृदयो मे
दमामे बज रहे हैं ? !
"चल ! चल ! चल !" सुन सुन,
सुन !
यह शोकगीत के दमामे हैं शायद
मगर उनकी चाट कसी कडी है,
विद्रोही !

न, न, न !
वो शोकगीत मे न होंगे,
विजय के ही होंगे निरतर
सदा की तरह !
क्या तुम बोल न उठे
यकायक कभी ?
इतना कुछ हो गया
दुनिया मे
हीरोशिमा नागासाकी ही नही
पूरा वियतनाम
पूरा चीन
पूरा अफ्रीका
पूरी अरब दुनिया
—ये सब
मानव चेतना के इतिहास में
व्याप्त हो गया
हम अपनी सास मे
इन सबको जीत है।
और तुम ? ।
युद्ध समाप्त हुआ
जिसम से और
भीषणतर युद्ध
आरभ हुए,
पश्चिम का दानवी रूप
प्रकट हुआ,
तीसरी दुनिया न जन्म लिया

और मार्से वाली !
यहूदियो अरवा ईसाइयो
की आने वाली कयामत
अभी फट तो नहीं पडी है
इस धरती के सर पर,
मगर इसी विस्फोट के लिए
प्राण पन से
अमरीका
निरतर अहर्निश
घोर अभ्यास कर रहा है !
तुम्हे खबर नही ?
तुम अपने
अपन सुदूर
विद्रोही अवचेतन में
मौन मे महाकाव्य की
मूक रचना करते रहे
नजरुल,
जो तीनो दुनियाओ के
उत्तुगतम धमके तुम्हे
उठा नही पाये
तुम्हारी सहज समाधि से ?
अब तुम उसी
मूक महाकाव्य के साथ
हमारी सबकी
प्यारी धरती में
सहज ही समाधिस्थ
हो गये हो
धरती को अपनी
चेतना से
अधिक उवरा
करने ।
नही जानता अभी
इतिहास मे क्या क्या
गुल खिलेंगे
दायी ओर से, बायी ओर से,
बि और उनके बीच से !
गुल
तूफानो से भीगे
और बडे गुट्ठल और कडे
जैसे मध्य अमरीका
के बयावानो मे होते हैं
बोक्टाई
कडे नसो वाले कैक्टस
रग बिरगी
कठोर काटेदार
सुर्ख और हरे और सफेद
और हीरे-नीलम-से
निगन्ध चमत्कार से।
और गुल
देखो देखो क
आकाश को
अपनी सुगध से मस्त बनाते हुए
सुर्ख गुलाब का
एक उभरता दरिया
सुर्ख गुलाबो के शिशु मुख
उल्लास से तमतमाये हुए
आनन्द म नहाये हुए
अनेक ऊर्जाओ की
हारमनी से संगीतमय,
मानो
अपने नृत्य ताल से
प्यारी मासूम
धरती को
उद्वेलित किये हुए
दूर तक गुलाबो का
एक ओर छोरहीन दरिया
अरे नजरुल !
तुम हमारे बीच म

थे न अब तक
—मगर हमे तो
अब पता चला
कि तुम हमारे ही बीच मे
थे अब तक
तुम्हारी अतिशय अतिशय
मध्यम गुमसुम
तुम्हारा शात महाकाव्य
हमे बेमालूम तौर से
—अपना साम जैसे
सहज सगीत मे
लिए हुए था
अब तक
और अब भी
क्या कोई अन्तर आ गया है ?
गौर से देखो
अनुभव करो
क्या कोई अन्तर
आ गया है ?
जहा तुम थे
अब भी वहा हो
इस मौन मे
अजब धमधा
—जो यह पहले नहीं।
इस मुखरता मे
एक अजब न
तुम्हारे गुनगुनीन
विद्रोही तरान
—जो अभी से पहले
इतनी आक्रान्ता
लिए हुए नही थ
याद है, याद है, याद है
गुरुदेव ने कहा था ?
भाई नजरुल !

तुम्हारे विद्रोही सग्रह की
पहली ही कविता को
मैं लगातार तीन दिन तक
पढता रहा
और उसी से
मेरे जिन गीतो ने
जन्म लिया है
उन्हें ही तुम्हे
इस कारागृह में भेंट देने के लिए
स्वय तुम्हारे सम्मुख
आ खड़ा हुआ हू
इन्हें स्वीकार कर
मुझे धन्य करो !
तुम एशिया की महाकवि हो
भाई !"
और तुमने क्या कहा था,
याद है ?
"गुरुदेव,
तुम सचमुच गुरुदेव हो !"
एक मह
बाहर
और

कहा

बहुत
बहुत

निरतर बजता हुआ
मैं तुम्ह सुनता हू
और दखता हू
सरो की नोकीली वाली हरी कतारो
मे—
जहा भी धान का कोई
एक दाना है, वहा—
जहा भी कोई बात
"सोनार" और "शोणित" से
शुरू होगी
वहा तुम हो
अचल
सर झुकाये
एकटक सामने से
देखते
न दखते हुए
मूक मौन मुखर
तीनो भौतिक देशा
की आतरिक एकता मे
मुखर अचल मूक
लक्ष्यवत अशीषवत
तीनो दशो के युद्ध
वैमनस्य
नाना योजनाओ के
परे दृढ, अचल,
एक रूप जसे कि
हा अल्लाह एक है
जैसे कि
उसकी मखलूक
यह प्यारी दुनिया
हम-तुम एक हैं !
इस एकता को
अपनी भवो मे उठाये
अपनी आखो मे
एक पवित्र सपने की तरह आजे
बैठ हो
अब भी बैठे हो
हमारी आखो के सामने
हमारे हृदय आज
ढाका की उस
पावन धरती पर
श्रद्धा और प्रेम के
फूल बन कर
अर्पित हो रहे हैं
चारा ओर से
ओ
कविमनीषी !
ओ हमारी
सोने की मिट्टी के
प्राण !
ओ हमारे प्राणो के
अमर विद्रोही !
और हमारी विश्व शांति के
अमर समायोजक !
—जो मौन मूक और
भुलाया हुआ सा है
वही
हमारे साथ
सास लेता भी रहा है
हम भी उसके साथ
बराबर निरतर
सांस लेते रह है
और अब भी
उसकी सास
हमारी सास मे
इतिहास बनती हुई
चल रही है !
(जनयुग)

क न अब तक
—मगर हम तो
अब पता चला
कि तुम हमारे ही बीच में
थे अब तक
गुमनामी अनिमय अतिमय
मध्यम गुमसुम
गुनगुना गान महाकाव्य
हमें अमानुष तौर स
—अपना गात अंग
गहन गम्भीर में
लिए हुए था
अब तक
और अब भी
क्या कोई अन्तर आ गया है ?
और न क्या
अनुभव करो
क्या कोई अन्तर
आ गया है ?

तुम्हारे विद्रोही संग्रह की
पहली ही कविता का
मैं लगातार तीन दिन तक
पढ़ता रहा
और उसी से
मेरे जिन गीतों ने
जन्म लिया है
उन्हें ही तुम्हें
इस कारागृह में भेंट देने के लिए
स्वयं तुम्हारे सम्मुख
आ खड़ा हुआ हूँ
इन्हें स्वीकार कर
मुझे धन्य करो !
तुम दुनिया की महानायक हो
भाई !'
और तुमने क्या कहा था,
याद है ?
'गुरुदेव,
तुम सचमुच गुरुदेव हो !'

निरतर बजता हुआ
मैं तुम्हे सुनता हू
और देखता हू
सरा की नोकीली काली हरी कतारो
मे—
जहा भी धान का कोई
एक दाना है, वहा—
जहा भी कोई बात
"शोनार" और "शोणित" से
शुरू होगी
वहा तुम हो
अचल
सर झुकाये
एकटक सामने से
देखते
न देखते हुए
मूक मौन मुखर
तीनो भौतिक देशो
की आतरिक एकता मे
मुखर अचल मूक
लववत अशीपवत
तीनो देशो के युद्ध
वैमनस्य
नाना योजनाओं के
परे दृढ़, अचल
एक रूप जैसे कि
हा अल्लाह एक है
जैसे कि
उसकी मखलूक
यह प्यारी दुनिया
हम-तुम एक हैं।
इस एकता को
अपनी भवो मे उठाये
अपनी आखो मे
एक पवित्र सपने की तरह आजे
बठे हो
अब भी बैठे हो
हमारी आखो के सामने
हमार हृदय आज
ढाका की उस
पावन धरती पर
श्रद्धा और प्रेम के
फूल बन कर
अर्पित हो रहे है
चारो ओर से
ओ
कविमनीषी!
ओ हमारी
सोने की मिट्टी के
प्राण!
ओ हमारे प्राणो के
अमर विद्रोही!
और हमारी विश्व शांति के
अमर समायोजक!
—जो मौन मूक और
भुलाया हुआ सा है
वही
हमारे साथ
सास लेता भी रहा है
हम भी उसके साथ
बराबर निरन्तर
सास लेते रहे हैं
और अब भी
उसकी सास
हमारी सास मे
इतिहास बनती हुई
चल रही है!
(जनयुग)

सुरंग के पार

□ राजीव सक्सेना

भेडिया की जमात का साक्षात भय खड़ा कर हमारी सुरक्षा की
खातिर एक शातिर नायिका ने यकायक बीस बीस मशालो से
भौंचक चकाचौंध भर हमे रेत ठेल दिया एक अंधी सुरंग में
जहा चीत्कारो के चीखो के जगल मे मशालें बन गयी थी
काली काली डायनें और मास पक रहा था कानूनी कडाहों मे

तुम कहा थे वह कहा था मैं कहा था क्या पूछें क्या पूछें
सभी को पता है कि हम सब एक सुरंग मे खडे थे जाल म या जेल में
कुछ भरमाये कुछ शरमाये कुछ घबराये कुछ चकराये
और अंधे अंधेरे मे टूट पडे हम पर देशी और विदेशी
डायनो के दाँत नख बहराये से मौन मे हमें सुनायी दी
अपने ही रक्त की चुप चुप चप चप-गडप गप आवाजें
अपनी ही हड्डियो की कट-कट चटक-मटक और हमने महसूसा
कि आपात काले आखो से अधिक देख पाता ह आदमी अपने कानो से
कानो से अधिक सुनता है अपने झनझनाते तन स और तन से कही अधिक
यन्त्रणाए महसूसता है टीसते ज्ञान बोध से और सूक्ष्म ज्ञान बोध
कवच ही नही है सुरक्षा का साधन है युद्ध मे विजय का निर्णायक

वे डायने समझती थी हमे भेड बकरिया पालतू और फालतू
हम बताना पडा राक्षसी जबडो को तोड कर उनका एक सच्चाई
कि हम है मनुष्य और शक्ति है हमारी दुदमनीय और अजेय
खेता मे उपजती और कारखानो म तपती इस्पाती भुजाओ मे
और खूनी जबडो को तोडने का नाम है रोशनी रोशनी रोशनी
और इस रोशनी की रक्षा जरूरी है आख की पुतली जैसी

मित्रो मत भौंचक खडे रहो भौचक इस रोशनी मे य किरणें स्वय अपने
कलेजे मे ही फूटी थी जब हमन तोडे थे वे खूनी जबडे
और इस रोशनी का श्रेय लेते हुए आड मे खडी है ज्ञेय और अज्ञेय
भेडिया की जमात फिर साक्षात गाया और बकरिया के भेष मे
और फिर चढा रह ह ये बडे बडे साजिशों के कडाह अपनी मादो मे
फिर इस रोशनी की रक्षा जरूरी है आख की पुतली जैसी

(जनयुग)

एक उमड़ता सैलाब

□ मोहन श्रीवास्तव

हममे ही डूबा है वह क्षितिज
जहा से उचित होता है
सबका आकाश
फेंकता ऊपाए
ऋतुए, वर्ष, सवत्सर
उछालता

व्यग्र है प्रतीक्षा
उन अदवा के टापो की
जो दो गहरे लबे सन्नाटो
के बीच
हम छोड जाते हैं
एक ढलते पुल के विध्वस सा
व्यग्र है प्रतीक्षा उन सूर्यों की
जिनका प्रकाश
हमे सौंप गया अपना अधियारा
और अधापन।

अब जब कभी भी भोर होगी
होगी, हम अपनी ही आग से
चुप्पी का विशाल नीला घटा
जब भी घनघनाएगा
अपने ही कठ से।

न हिले
वह तिलस्म द्वार
तिल भर भी न हिले
जो मिलने नही देता है
एक उमडता सैलाब
दूसरे सैलाब से
एक द्वीप दूसरे द्वीप से

हम सबके बीच एक खिडकी
और है
जहा तमाम सडकें,
रेल की पटरिया
पानी और हवाओ के रास्त
सब एक दूसरे से मिलते हैं।
चिडिया खोज रही हैं राह
इस वन से—
उस वन क मौन के बीच
शाम इस तट की सुबह
उस तट ले जा रही है
भटकते रीत मेघ-खड
जोड रहे हैं सबका आकाश।
समुद्र के नीचे भी प्रवाहित हैं
धाराए
एक क्षण और दूसर क्षण के बीच
कुछ भी न घटने पर
घटित होता है भविष्य
और प्रतिध्वनित होती है
अनगिन गुमनाम यात्राए
और अतीत मे जड फेंकता
इतिहास ठूठ हो जाता है।
व्यग्र है उन अटल
ध्रुवताराओ की खोज
जहा से फेंके गये
दिशाओं के बर्छे
लहू लुहान कर जाते हैं
उभरते उन क्षितिजो को
जो हममे डूबे हैं।

(जनयुग)

चवरी

□ कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह

कभी चदवा रूपसपुर
कभी चवरी।
यह चवरी कहां है ?
भोजपुर
यानी बाबू कुंवर सिंह के जिला शाहाबाद
यानी दलितों के पैगंबर महात्मा गांधी के
हिंदुस्तान
यानी अब इस नये समाजवाद में—
आखिर कहां है चवरी ?
जलियांवाला बाग से कितनी दूर—
वियतनाम के कितनी करीब ?
कोई भी ठीक ठीक नहीं बोलता।
फिर, तू ही बोल—कहां है चवरी ?

तूने तो
देश विदेश के ड्राइंग रूमों में सजे
किसिम किसिम के आइनों में झांका होगा—
कहीं चवरी को भी देखा ?
जो सड़क चवरी से निकलकर दिल्ली जाती है
चवरी की हरिजन टोली के नौजवानों के धुधुआते पेट से
खींच कर बाहर लायी गयी अंतड़ियों की लंबाई क्या है ?
(कुछ पता है, वे कब फिर पलीता बन जायेंगी।)

२

चदना रूपसपुर से चवरी पहुंचने में
समय को कितना कम चलना पड़ा है।
और कितनी कम बरबाद हुई है राजधानी की नींद

पुलिस की खूनी और न्यायपालिका के बूचड़ खाने
बन जाने में।

३

जिसे कहते हैं
मुल्क
प्रशासन
न्यायपालिका
उसका रामकली के लिए क्या अर्थ रह गया है ?
रामकली गुम हो कर सोचती है
और उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा है।
लाली गौन आयी है
और लाल मोहर उससे छीन कर मिटा दिया गया है—
वह समय के सामने
अकेले, बुत बनी रहती है—उसकी बेबाक आंखों के लिए
दिन और रात में कोई फर्क नहीं रह गया है।
सीता और बंजू और रघुवंश की छांह के नीचे
जनतन्त्र
किसी बहुत बहुत बड़े जुर्म के मुजरिम सा
सिर नीचा किये बैठा है
और कहीं कुछ नहीं हो रहा है।

४

मजबूरी का नाम महात्मा गांधी है
फिर, भूख और तबाही और जोरो जुल्म का क्या—
नाम होगा ?
क्या नाम होगा इस नये जनतन्त्र और समाजवाद का ?
नक्सलवाड़ी या श्रीकाकुलम बहुत छोटा नाम होगा।
फिर, सही नाम क्या होगा ?

५

तुझे
मुल्क न जाने अनजान
जी जान से अधिक चाहा है

तेरी मुसकान को तरो ताजा रखने के लिए
(खुद भूखा रह कर भी)
एक से एक खूबसूरत गुलाब पदा किया है।
तेरे फूल को
(जब तू नहीं रहेगी)
गोद में ले लेने के लिए
हरी-से हरी घास उगायी है।
और तेर होठों को चूमन के लिए
बड़ा से बड़ा जानदार आईना तैयार किया ह।
फिर, क्या कमी रह गयी है,
कि उसकी सुबह अब तक,
शाम से अलग नहीं हो सकी है?

६

ठंडे लोहे पर टगी
काठ की घटिया के सहारे
आगन के पार द्वार
कठपुतली उवशी का यह नाटक
आखिर कब तक जारी रहेगा?

७

आत्महत्या के लिए सबसे माकूल वक्त तब होता है
जब रोशनी से अंधकार का फर्क मिट जाता है
बोल, फिर क्या बात है—आत्म हत्या कर लेगी?
या अंधेरे से घबड़ाया हुआ कोई हाथ बढ़ कर
तेरा गला दबोच देगा?

छिप कर कहाँ रहेगी
आज सारा हिंदुस्तान चकरी है
जिसके हिस्से से रोशनी गायब है

'धर्मो-

पार्क में खेलते हुए बच्चे और वे लोग

□ विश्वनाथ त्रिपाठी

पाक म खेलते हुए बच्चे
आसमान का हथलिया पर रख कर, मुट्ठियो मे ब द कर लेत हैं
फिर मुट्ठियाँ खोलत हैं
ता भरभरा कर सकडो गुब्बारे उड पडते हैं।
हरेक बच्चा अपनी अस्थिर और व्यस्त उगलियो मे
आसमान पर एक चित्र बनाता है,
और सहसा पूरा आसमान आट गलरी बन जाता है।
मैं अपनी बच्ची की उगली थामे इस गैलरी के
एक एक चित्र को देखने म व्यस्त रहता हू कि
पता नही कहाँ से आ जात हैं—लम्बी लम्बी घडियाल जसी
कारा म—
बच्चो की हसी—शताब्दिया के पार की धूप होती है
कि उनकी चुरट के धुए के बादल
उस धूप पर मडराने लगते हैं
पता नही कितनी सुरगो और तहखानो के स्वामी वे
आसमान, पाक और बच्चा सबको, झोले मे ब द करके
घडियाल सरीखी कारो मे रख लेत है
मस्त और अवाक म घर लौटता हू और मन के
रगिस्तान म घूमता हुआ थक कर सो जाता हू
तो काले नयादे ओढे, रात के अधेरे मे पता नही कसे
मेरे शयन कक्ष मे आ जात ह पिस्तौल तान डराते है
मैं घटकते हुए कश थाना एक तरफ अपनी बच्ची को
और दूसरी तरफ अपनी पत्नी को टटोलता हुआ
धमकिया और हाहाकार सुनता रहता हू।

(प्रतिबद्ध कविता—१)

पूर्वाभास

□ केदारनाथ सिंह

रात—कहीं कोई मीनार टूटने की आवाज़
इधर आई थी
क्या यह सच है ?

सुबह—एक मंदिर के पास किसी अजनबी
फरिश्ते के पंख पड़े दीखे थे
क्या यह सच है ।

दोपहर—किसी टूटे दरवाजे से होकर
फूलों के रथ का जुलूस एक गुजरा था
क्या यह सच है ?

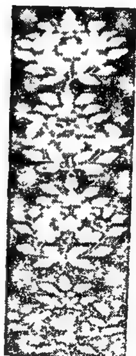
शाम—किसी बच्चे ने बुद्धमूर्ति के आगे
कृपा का एक नया मंत्र
गुनगुनाया था
क्या यह सच है ?

गालियों से ये जवां आग बुझ न पायेगी
गम फूंकोगे तो कुछ और भी लहरायेगी
यह जवां आग जो हर शहर में जाग उठी है
तीरगी देश के इस आग का भाग उठी है
— हबीब जालिब

□□ दूसरा खंड

विकास

[वस्तु-रूप अन्तर्विरोध और निषेध का निषेध]



□□□ "फटसी के प्रयोग में, कई प्रकार की सुविधाए होती हैं। एक तो यह कि जिये और भाग गय जीवन की वास्तविकताओ के बौद्धिक अथवा सारभूत निष्कर्षों का अथात जीवन ज्ञान का, (वास्तविक जीवन चित्र उपस्थित न करत हुए) कल्पना क रगो म प्रस्तुत किया जा सकता है। इस प्रकार की ज्ञान गभ फन्टसी वास्तविक जीवन हा का प्रतिनिधित्व करती है। लेखक वास्तविकता के प्रदीघ चित्रण से बच जाता है। वह सक्षेप में, ज्ञान गभ फटसी द्वारा, सार रूप मे जीवन की पुनरचना करता है। किन्तु फटसी का प्रयोग कुछ विशेष असुविधाए भी उत्पन्न करता है, जिनमे से यह है कि फटेसी म कभी कभी जीवन तथ्य इस प्रकार प्रस्तुत होते हैं कि उन्ह पहचानना मुश्किल होता है। यहा तक कि कभी-कभी उनका क्रम स्थापित करने में भी अडचन होन लगती है। प्रतीकात्मक रूप से प्रस्तुत होने के कारण, वास्तविकता या जीवन तथ्य, अधिकतर अनुमान ही से सवेदनात्मक अनुमान ही से पहचाने जा सकत हैं। सक्षेप म फटेसी एक झीना परदा है जिसम से जीवन तथ्य झाक झाक उठते है।"

□ मुक्तिबोध

□□□ "उदात्तता अतिचेतनावादी दिव्य अनुभूतियो म नही, इतिहास से जूझत हुए मानव के चेतन प्रयासो मे है कलात्मक सिद्धि शिल्प के अति सरलीकृत रूपो म नही, सजनात्मक भाषा के साथक उपयोग मे है। काव्य के इन मूल्यो का कोई चाह तो अपन ताप के लिए 'रस' का नाम भी द सकता है।"

□ डा नामवर सिंह

लोहसांय

□ धूमिल

ठेलू ठीह पर जाता है
और जुगाड़ जमाता है
काटा काटे पर फिट हो रहा है
कील में कील भीड़ रही है
न सूतभर इधर
न सूतभर उधर
यह रहा कमासुत हथौड़ा—
बजर हनता है
छेनी सड़सी में ऐसे तनी है
जैसे गुदार मांस में धसा हुआ दांत
पेंच जहां ढीले थे, धर दिये गये हैं
मशीन बिल्कुल तैयार है
खराद के लिये
मगर कहां है विलाक
नक्शा कहां है
कहां हैं औजारों की बाक
और सबसे जरूरी—सधे हुए हाथ
कहां हैं
रोटा कितने मशक्कत से मिलती है
इस पैंने वक्त
जबकि चीजें बेशुमार
बनैली शक्ला में बदल रही हैं
और लोहा जहां गलत मुड़ गया है
ठोक कर ठीक हो सकता है
पलट् टेम पर नहीं आता
ठेलू को मिस्त्री से शिकायत है
ठेलू ठीह पर जाता है

धुवनी की मरी हुयी खाल को
निहारता है
बुझे हुये कायले छाट कर
भाथी धधकाता है
लोहसाय चालू होती है
एक एक कर आते हैं किसान—
खेतिहर मजूर
गाव गिराव से
सलाम-रमरम्मी के बाद

ठेलू परखता है फाल—
गड़सा, खुरपी, कुदाल
हसी मजाक बतकही चलती रहती है
इसी के दौरान

इधर उधर देखकर
धीरे से कहता है टेकू बनिहार
—'हसुये पर ताव जरी ठीक तरे देना
कि धार मुड़े नहीं आजकल
धिनार निहाई ने
लाह को मनमाफिक हनने के लिये
हथौड़े से दोस्ती की है'
सब ठठाकर हसते है
ठेलू मतलब दहाकर मुसकाता है
और आच लहकाता है।

"अर्यांत"

अपने प्रिय कवि के लिए—नेरूदा

□ विजेन्द्र

यहा कचनार की टहनिया कब फूलेगी ये भदैया जामुनें निष्कप
खड़ी हैं
ये ढेले यो ही पड़े है   सब एक अग्निदाह से गुजरने को
है—यह, सब—
जो उठके खड़े होते हैं उन्हे बैरिकों में ठेला जाता है अधाकूप
काल कोठरियो मे
उनकी आत्माए प्रकाश को
छटपटाती हैं।
ये भूरे भूरे बद्दल अपनी शक्ल बदल रहे हैं।
जगली बेर सुर्ख होने को है। घने के पन्नी धीरे
धीरे वापस जाते है—ओ कवि   तुम्हारी कविताए कही
नही दिखीं हाँ-कही, कही, कही कभी कभार मरुस्थल मे
एक साथ रेत गर्म हो उठती है और पीडने वाली लतरें सुर्ख,
गधहीन फूलो से लद जाती हैं। इनके नाम हम नही जानते।
इनके गाव हमने नही देखे जिनकी वजह से यह धरती
मुग्ध है वे इतने ज्यादा इतने सघन   हैं—इतने, इतने—कि
उन सबके नाम हम नही जानते।   पीठ पर
ये दास प्रथा के निशान हैं। ये क्रूर दमन के गड्ढे
माथे पर चमकते हैं।
ये निहत्थे लोग सैन्यदल के विरुद्ध खडे हैं। ये उन सुरक्षादलो के
खिलाफ आगे आये। और अपनी चमडी का कवच पहने
चिल्ला जाड़े में ठिठुरे।
यहा उत्तराखड के बहुत बड़े हिस्से में बिल्कुल
घुप्प अधेरा है। राजस्थान में अरावली की नग्न चट्टाने हैं
सूखी नदियां के पेटे में
सिलवटें दिखाई देती है। यहा उजाला कब आयेगा, कब—

कब ये चिप्पियां खत्म होंगी वे रचनाएं
कहां है। वे आवाहन कहां हैं आ कवि कवि—
इन सारे अराजपत्रित कर्मचारियों के
दम पर
हम सब उबासियां लेते हैं हर पत्थर में एक
दरार है। हर पेड़ की जड़ खोखली है। पेट में
घूंसे लगते।
ये पुतलियां
चमकती हैं बस तापरात यहां जलकुंभी काली
पड़ गई है और नई जमीन निकल धान पर पछाई हिस्सा
अर्द्धचंद्राकार हो गया है। ये जो चट्टानों में खनिज
पर्तें दिखाई देती हैं ये जो डरावनी शक्लें
बन गई हैं—यह जो रितु अपने छिलके उतार कर
फेंक गई है। उन्हें अपने नपने बदलने होंगे—
उन्हें काख के बालों को यहां जगह देनी होगी, उन्हें अब
खनिकों की
यह भाषा समझनी होगी।

(जनयुग)

> वो जंग ही क्या वो अम्न ही क्या दुश्मन जिसमें नाराज न हो
> वो दुनिया, दुनिया क्या होगी जिस दुनिया में सौराज न हो
> वो आजादी आजादी क्या मजदूर का जिसमें राज न हो
> ये जंग है जंग आजादी आजादी के परचम के तले
>
> — मखदूम मोहियुद्दीन

रचना कर्म का स्वाद

□ मलय

बेइमानी से लदी हुइ हवाओ
गडगडाती धुए की रेखाए दौडती हैं
और पत्तियो के पख छितरा जाते हैं
बिखरे मेडो से
दूब की तरह सूखता है हृदय
अधड में फसी आखा की दृष्टि
और छाती से चिपका
मनुष्य की जिन्दगी का सरोकार
समुद्र की तरह गहरा होकर
कपा देता है चेतना का विस्तार
सिर झुकाये उकडू बैठने की तरह
हड्डिया की फसल
लहराकर खेतो से वापस होती है—
और—बसत की चिडिया
मेडो पर नाक रगडती हुइ
सडक के किनारे
धूल मे छटपटाती है
पोस्टरों का पूरा प्रकाश
अधेरे की दरकार के साथ आगे आता है
और हाथो मे पडी नीली नसो मे
जजीरो की तरह लपेट लेता है।
फुरसत के ठहाके और मूकता का माहौल
खाली वक्त पर
चलते चाकुओ के बीच
अपना सिर न झुकाने का आकाश
कुत्ते के दातो मे से
लटका होता है

और आखों के पलक
उठने के बजाय
सूखे मैदानो मे बिछे हुए हैं
किसी रोशनी का पत्थर आवाजो से
घायल होने के लिए ।
चुभना समाप्त होता गया है
चौंधियाती भुरभुरी भाषा की रस्सियो के बीच
मैं हू !
जो किसे नही ढूढता
और समय के आघात
मरते शब्दो के साथ
स्याही मे डूबकर
करते हैं नौकरी के कागज में छेद !
सुरगो के रिपटीले भेद !
और जिन तक पहुचता हू
या तो धूल खाते लोगो की मालें नही सुनतीं
या मसखरो के माथे
पोस्टरो की दीवाल बनकर
सुरक्षित है
इस डकारते मौसम मे
रात का धुआ कितना उठेगा
और चिरमिराती नाक के पानी मे
सूघने का भय, कितनो को एक साथ खडा करेगा ?
कौन जाने ?
कौन जाने !
मेरी तारीख के पहले
किसी सन की वारदात
खडी होती है या नही ?
नही और हा के तमाचे से
निकला जा रहा हू—
बशरम की हरी झाडियो के बीच से—
पर !—आशा से अधिक सतर्क हैं
जो रहे हैं वहा

जहा इन्तजार की जमी घास के सिर
सफेद होते होते
चौडा गये हैं—
और सूय के उगते प्रकाश को
तनी हुई चादर पर
जिन्दगी के हथियारो को बाटा जा रहा है
गुजाइश के गवारपन
और उम्र की हसोड दोस्ती से
अलग—
रचना नम का स्वाद
बेईमानी से घिरी हुइ हवाओ के
तौर तरीको मे छिदने के लिए
हवाओ को चीरने के लिए ।

(उत्तरार्ध)

नम शाखो ने लचकने की सजा पायी है
एक-एक फूल को तरसा के बहार आयी है
तारे उतरे हैं जमी पर कि खिला है बेला
ढाक फूला है कि शोलों की घटा छाई है
है बहुत गम फजा शाख झुकाने वाले
फूल चुराने वाले
तुमको पहचान लिया दूर से आने वाले

— कैफी आजमी

कविता का अर्थ

यह सब कैसे होता है

□ कुमार विकल

मैंने चाहा था कि मेरी कविताएं
नन्हें बच्चों की लोरियां बन जाएं
जिन्हें युवा माएं
शैतान बच्चों को सुलाने के लिए गुनगुनाएं।
मैंने चाहा था कि मेरी कविताएं
लोक गीतों की पंक्तियों में ढल जाएं
जिन्हें नदियों में मछुआरे
खेतों में किसान
मिलों में मजदूर
झूमते गाएं।
किन्तु मेरी कविताओं की अजीब ही धुन है
खुले विस्तार से बन्द कमरों की ओर जाती है
उजली धूप में रहकर
अंधेरे के बिम्ब बनाती है।
मैं हैरान हूं कि मेरी कविताएं
काली हवाओं के बिम्ब कहां से लाती हैं
अंधी गुफाओं की हिम शिलाएं
और वेगवती काली नदियां कहां से आती हैं
किस प्रक्रिया में शहर
जंगल में बदल जाते हैं।
जिनमें हिंसक जानवर दहाड़ते हैं।
मैं समझना चाहता हूं यह कैसे होता है
यह सब कैसे होता है
और जब दुनिया आराम से सो रही होती है
तब नींद की दुनिया से दूर—
मेरा हमनाम एक आदमी
अन्तर्यात्राएं कर रहा होता है।

हर यात्रा के बाद
वह आदमी मुझे बताता है
'कि इन यात्राओं में—
मैंने कोई काली हवा नहीं देखी
किसी काली नदी में नहीं तरा
किसी जंगल या अंधी गुहा में नहीं भटका
मैं भटका हूं इसी कुटिल नगरी के तहखानों में
जहां आदमी के खिलाफ साजिशें होती हैं।
हर यात्रा में मुझे बड़ी बड़ी इमारतें मिलती हैं
जहां कोई गोली नहीं चलती
कोई बम नहीं फूटता
किन्तु जहां मुर्दा गाड़ियां हर रात आती हैं
जाहिर है, कुछ रहस्यमयी हत्याएं होती हैं।
इन इमारतों में मुझे
[illegible]नदनाता हुआ
एक हिंसक, जानवर-नुमा आदमी मिलता है
जिसके हाथों में खजानों की चाबियां
और कुटिल नगरी की काली योजनाएं होती हैं।'
मेरा हमनाम मुझे बहुत कुछ बताता है
कि जब वह इन यात्राओं से लौटता है—
तो एक जंगल सी दहशत उसे महसूस होती है
और उसे—
मेरी कविताओं के बिम्ब याद आते हैं।
मैं उसकी आतंकथाओं से डर गया हूं
और एक ठंडे आतंक से भर गया हूं।
नहीं मुझे अपनी कविताओं की हिमशिलाओं
अंधी गुहाओं
और काली हवाओं के स्रोत नहीं ढूंढने हैं
मैं सिर्फ इन चित्रों बिम्बों से मुक्ति चाहता हूं
मैं इनकी अंधी दुनिया से निकलकर
लोकगीतों की खुली दुनिया में लौटना चाहता हूं।
मेरी मां इंतजार में होगी
मैं मां के चेहरे की झुर्रियों पर
एक महाकाव्य लिखना चाहता हूं।

मेरी मा का चेहरा
गोर्की की 'मा' से मिलता है
और अब भी उसका खुरदरा हाथ
कुछ इस तरह से हिलता है—
कि जैसे दिन भर की मशक्कत के बाद
वह त्रिजन मे कोई लोकगीत गा रही हो।
मैं चाहता हू कि मेरी कविताए
मा के गीतों की पक्तियो में खो जाए
बन्द कमरो से खुले चौपालो मे लौट आए।

(समारम्भ, जनयुग)

[त्रिजन-पजाब की ग्रामीण महिलाओ का गोष्ठी स्थल।]

यह मजलूम मखलूक गर सर उठाये
तो इसान सब सरकशी भूल जाय
ये चाहे तो दुनिया को अपना बना लें
ये आकाओ की हड्डिया तक चबा लें
कोई इनको एहसासे जिल्लत दिला दे
कोई इनकी साई हुई दुम हिला दे।

—फैज अहमद 'फैज'

पाटा

□ लीलाधर जगूड़ी

रात ! तुम काली खाद हो
तारो ! तुम अच्छी नस्ल के बीज हो
चाद ! तुम हसिया हो
आकाश ! तुम खेत हो
मैं तुम सबका इस्तेमाल करना चाहता हू
लेकिन मेरे पास बैल नही है
आकाश !
कुछ लोग तुम्हे हवाई जहाज से जोत रहे हैं
रोज
इतने हवाई जहाजो से उड़ते हुए
ये कौन लोग हैं ?
इनमें हमारे गाव का
हमारे रिश्ते का
हमारी जान पहचान का
एक भी आदमी नहीं है
मैं सोचता हू (क्योंकि मेरी इच्छा होती है)
कि सारी धरती पर पाटा लगा दू ।

(आलोचना)

उड़ान

☐ ऋतुराज

मैंने उन चारो को एक साथ
सिमटे हुए बैठे देखा
तार पर।
अगल बगल मा बाप
बीच मे बच्चे। फूलचुसनी चोंचें
तीर जैसी पूछें।
पतली हुई तारें पर।

हा तब ही मेरी नजर पड़ी
उन प्यारे प्यारो पर।
हमारे घर मे भी तो
इसी तरह का झूलना है
बीच मे बच्चो को बठाकर
दूर दूर तक देखना है।
बाहर का दृश्य
राक्षसो के हाथो में जलता है।
ऐसे ही एक क्षण मैंने
उन्हे परस्पर के कामकाजी
सम्बन्धो से पहचाना था
मा बाप के पास होने की गर्माहट मे
दूर दूर तक उड़ने की आशा लिये

वे गात गात चुप हो गये।
आंखें सुख से भीगी

नया मोर्चा

☐ श्रीहर्ष

फिर अपने जूतों के फीते कसने लगे हैं—लोग
चील की छाया—गिद्ध बने
उसके पहले ही
भीतर का भय पोछ
ट्राम-बसों म सफर करते—खामोश होंठ
फिर हिलने लगे हैं।

हवा के बदलते रुख ने आकाश के पंजे को
दबाकर कर दिया है—छोटा
हथियारों की नोक—तोड नही सकी
प्रतिवादी मन
ढोल और नगाडो के भीतर की पोल को
खोल दिया बडी आवाज ने
अब कौन सा नया करिश्मा—
भटकायेगा सबको।

चीजो मे लगी आग फैल रही है सारे देश मे
मार सबकी पीठ पर पड रही है
जुबान खोलने वालो की कट रही है।

इतिहास के हर पृष्ठ से
गूगे लोग चीख चीखकर पूछ रहे हैं—
क्या वर्षों बाद
लालटेन लेकर—फिर खोजनी होगी रोटी ?

जिसकी तलाश ही आदमी को बनाती है
खौफनाक । मानसिक गुलाम !

मैं लूट खसोट के राज्य में
ले रहा हू सास
जहा बक बैलेंस और शारीरिक शक्ति का
नाम है—नागरिकता
आजादी—जिसका अर्थ किराये के पडित बता रहे हैं
कालगल—
प्रतिवाद का पुरस्कार है—मौत !

देश के हर कोने से
खतरे की घटिया बजने लगी हैं
फीरड-मार्शल अपने तमगो को माड रहा है—धूप
नये सामतो के बावर्ची भून रहे हैं मास
गुलाम बन जाने के अधड में फसे लोग
फिर अपने जूतो के फीते कसने लगे हैं ।

("अर्थात')

ये फिकरे धन दौलत वाले ये आखिर क्यों खुश रहते हैं
इनका सुख आपस मे बाटे ये भी आखिर हम जसे हैं
हमने माना जग कडी है सर फूटेंगे खून बहेगा
खून भी गम भी बह जायेंगे, हम न रहें, गम भी न रहेगा
फैज अहमद 'फज'

वापसी

☐ श्रीराम तिवारी

चौबीस साल तक भारतीय सल्तनत
                से मुक्त हुए आदर्श
की गिरफ्तारी
की छाती, दाढ़ और भुजाओं मे
सामूहिक अनुभव का मांसल प्रकाश
देखकर देश का उपभोक्ता मनुष्य-वर्ग
डर गया ।
चहार दिवारी में यह कैसे संभव हो गया ।
आदर्श
काल्पनिक नही, प्राकृतिक थे
                हवा और सामाजिक परिवेश
के   अत्याचार मे   घटना
                की तरह शामिल और सही ।
मैं सर्वोत्कृष्ट क्रांतिकारी पदार्थ की
वापसी पर जन-समितियों   के बलिदानी
लोकतंत्र की जय मे कूद गया
और काया शुद्ध कर ली ।
अब मैं सिर्फ आदमी नही उसका स्वार्थ भी हू—
मशीन पर कब्जा करने
के आपा उपकरण मे
आप बहुसंख्यक मनुष्य
मेरे लिए
नागरिक और चुनाव नही
वसीयत हैं !
नींव पर आपसे हाथ मिलाता हू
स्वागत !

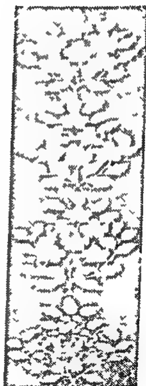
(वाम २)

□□□ तीसरा खंड

स्वरूपांतर

[सपाटबयानी और प्रगीत]

- □ कन्हैया
- □ शलभ श्रीराम सिंह
- □ मानसिंह राही
- □ रमेश रंजक
- □ मुंशी
- □ चंचल चौहान
- □ इब्बार रब्बी
- □ खगेन्द्र ठाकुर
- □ भारत भारद्वाज
- □ अजय तिवारी
- □ मोहन श्रोत्रिय



□□□ पूंजीवादी समाज मे कलाकार की स्वाधीनता, सम्बन्धी धारणा एक भ्रम मात्र है, क्योंकि ऐसे समाज मे जो पैसे के बल पर टिका हो, जहा मजदूर गरीबी और बदहाली में और मुट्ठी भर अमीर कामचोरी मे अपना दिन गुजारते हो, कोई वास्तविक और सच्ची स्वाधीनता हो ही नही सकती। क्या लेखक पूंजीवादी प्रकाशक से स्वतन्त्र हो सकता है? मजदूर वर्ग का साथ देने वाला, संघर्ष, विजय और निर्माण मे उसके साथ बढने वाला, ऊचे वर्गों के बदले कामकाजी आवाम की सेवा करने वाला साहित्य ही सही अर्थों मे आजाद हो सकता है।

□ डा रामविलास शर्मा

□□□ "अपनी बिकी हुई मेहनत बे सहारा जिन्दगी की आकाक्षाए, सामाजिक उलझनो से होने वाले मानसिक तनाव, स्थिति परिस्थिति की क्रिया प्रतिक्रियात्मक सम्वेदनाए आदि को अपने मे सम्मिलित करने वाला विचार वेदना मडल जन लोक मुक्ति की नयी क्रातिकारी विचारधारा से और भी सशक्त, और भी सम्वेदनमय हो जाता है, तब जिस साहित्य का आविर्भाव होता है उसमें महान 'मनुष्य सत्य' होता है।"

□ गजानन माधव मुक्तिबोध

मेरी पार्टी

कन्हैया

मेरी पार्टी
सृजनात्मक जीवन का पथ आलोकित करती है
मेरी पार्टी
द्वन्द्वात्मक दर्शन की विभा प्रसारित करती है
जब घनघोर घटाएं संकट की घिर आती हैं
जब प्रचण्ड आसुरी शक्तियां शोर मचाती हैं
जब आंधियां प्रलय की अपना जोर दिखाती हैं
जब काली रातें विनाश के बिगुल बजाती हैं
मेरी पार्टी अटल हिमालय सी तन जाती है
मेरी पार्टी अगम सिन्धु बनकर लहराती है
मेरी पार्टी
शांति प्रगति के नव क्षितिज उद्घाटित करती है
मेरी पार्टी
सृजनात्मक जीवन का पथ आलोकित करती है
एक बीज लघु छाया तरु कैसे बन जाता है—
एक बिन्दु किस भांति सिन्धु बनकर लहराता है—
एक शब्द कैसे समग्र भाव को समेटता है—
एक छंद कैसे अनंत छवि विभा जगाता है—
मेरी पार्टी क्रम विकास की दिशा दिखाती है
मेरी पार्टी भेद सृष्टि का सहज बताती है
मेरी पार्टी
विश्व मनुज के दृष्टिकोण नव व्यंजित करती है
मेरी पार्टी
सृजनात्मक जीवन का पथ आलोकित करती है
भीषण बंधन शोषण उत्पीड़न का खंडित है
नयी विभा से विश्व सभ्यता सम्प्रति मंडित है
श्रम पर आधारित समाज वंदित-अभिनंदित है

वग मुक्ति दशन से भव मानव अनुप्राणित है
मेरी पार्टी विश्व सवहारा की भाषा है
मेरी पार्टी अटल वग योद्धा की भाषा है
मेरी पार्टी
वचारिक सघर्षों को अनुप्रेरित करती है
मेरी पार्टी
सजनात्मक जीवन का पथ आलोकित करती है
मेरी पार्टी युग दपण है, नूतन दशन है
मेरी पार्टी विश्वप्राण है, एक निष्ठ मन है
समर नीति औ' परपरा है भिन्न भिन्न लेकिन
मेरी पार्टी केन्द्र बिंदु है, प्रेरक चिंतन है
मेरी पार्टी अटल प्राण रणधीरो की पार्टी है
मेरी पार्टी बलिदानी वीरों की पार्टी है
मेरी पार्टी
विश्व शांति के तत्वो को सयोजित करती है
मेरी पार्टी
सजनात्मक जीवन का पथ अलोकित करती है

('जनयुग')

ज़िंदाबाद-इंक़लाब

□ शलभ श्रीराम सिंह

नफ़स-नफ़स, क़दम क़दम
बस एक फ़िक्र दम ब दम
घिरे हैं हम सवाल से हमें जवाब चाहिये।
जवाब दर सवाल है कि इंक़लाब चाहिये।

इंक़लाब। ज़िंदाबाद॥
ज़िंदाबाद। इंक़लाब॥

जहां अवाम के खिलाफ़ साज़िशें हों शान से
जहां पे बेगुनाह हाथ धो रहे हों जान से
जहां पे लफ़्ज़े अम्न एक खौफ़नाक राज़ हो
जहां कबूतरों का सरपरस्त एक बाज़ हो
वहां न चुप रहेंगे हम
कहेंगे, हां कहेंगे हम
हमारा हक़। हमारा हक़। हमें जवाब चाहिये।
घिरे हैं हम सवाल से हमें जवाब चाहिये।
जवाब दर सवाल है कि इंक़लाब चाहिये।

इंक़लाब। ज़िंदाबाद॥
ज़िंदाबाद। इंक़लाब॥

यक़ीन आंख मूंद कर किया था जिन पे जान कर
वही हमारी राह में खड़े हैं सीना तान कर
उन्हीं की सरहदों में क़ैद हैं हमारी बोलियां
वही हमारे थाल में परस रहे हैं गोलियां
जो इनका भेद खोल दे
हर एक बात बोल दे
हमारे हाथ में वही खुली किताब चाहिये।
घिरे हैं हम सवाल से हमें जवाब चाहिये।
जवाब दर सवाल है कि इंक़लाब चाहिये।

इंक़लाब। ज़िंदाबाद॥
ज़िंदाबाद। इंक़लाब॥

वतन के नाम पर खुशी से जो हुए हैं बे वतन
उन्ही की आह बे असर, उन्हीं की लाश बे-कफन
लहू पसीना बेचकर जो पेट तक न भर सके
करें तो क्या करें भले न जी सकें न मर सकें
सियाह जिंदगी के नाम
जिनकी हर सुबह व शाम
उनके आसमा को सुर्ख आफताब चाहिये।
घिरे हैं हम सवाल से हमें जवाब चाहिये।
जवाब दर सवाल है कि इन्कलाब चाहिये।

इन्कलाब। जिंदाबाद॥
जिंदाबाद। इन्कलाब॥

होशियार। कह रहा लहू के रंग का निशान
ए किसान होशियार। होशियार नव जवान।
होशियार। दुश्मनों की दाल अब गले नहीं।
सफेदपोश रहजनो की चाल अब चले नहीं।
जो इनका सर मरोड़ दे
गरूर इनका तोड़ दे
वह सरफरोश आरजू वही शबाब चाहिये।
घिरे हैं हम सवाल से हमें जवाब चाहिये।
जवाब दर सवाल है कि इन्कलाब चाहिये।

इन्कलाब। जिंदाबाद॥
जिंदाबाद। इन्कलाब॥

तसल्लियों के इतने साल बाद अपने हाल पर
निगाह डाल, सोच और सोच कर सवाल कर
किधर गये वो वायदे? सुखों के ख्वाब क्या हुए?
तुझे था जिसका इंतजार वो जवाब क्या हुए
तू इनकी झूठी बात पर
न और ऐतबार कर
कि तुझको सांस सांस का सही हिसाब चाहिये।
जवाब दर सवाल है कि इन्कलाब चाहिये।

इन्कलाब। जिंदाबाद॥
जिंदाबाद। इन्कलाब॥

"क्यों"—४

चल अवाम के लश्कर चल...

□ मानसिंह 'राही'

चल आंधी चल अंधड़ चल ॥
चल तूफान बवण्डर चल ॥
चल गरीब के लश्कर चल ॥
चल अवाम के लश्कर चल ॥
नारों से गरीबी नहीं मिटेगी,
चल अब इस पर करें अमल ॥०॥

हर दिन नई नई बातें, हर दिन नइ नइ घातें ।
नई रोशनी लाने वाले, ले आये काली रातें ।
इस परिवतन के नये दौर मे चलो मचादें उथल पुथल ॥०॥
चल अवाम के लश्कर चल चल गरीब के लश्कर चल ॥०॥
नारा से गरीबी नही मिटगी—

भटक रही दर दर तरुणाई, आसमान छूती महगाई ।
जितने गड्ढे पाटे जाते उतनी गहरी होती खाई ॥
लूट व शोषण के डेरे हैं, झपट रहे हैं टिड्डी दल ॥०॥
चल अवाम के लश्कर चल—
छीन ले रोटी छीन ले काम, बिना लक्ष्य कैसा विश्राम
धन व धरती बट के रहेगी, भेद की खाइ पट के रहेगी
फिर आस्तीनो के सापो के फन डालो रे इस बार कुचल ॥०॥

चल अवाम के लश्कर चल—
बहुत सह लिया अब न सहेंगे, जो कहना है साफ कहेंगे
नये दौर मे चल न सकेगा, बढा कारवा रुक न सकेगा
ठोकर से राह बना डालें डालें युग की तस्वीर बदल
चल अवाम के लश्कर चल—

(जनयुग)

हड़ताल का गीत

□ रमेश रजक

आज हम हड़ताल पर हैं
हड्डियों से जो चिपक कर रह गयी
उस खाल पर हैं।

यह खबर सबको सुना दो
इश्तहारों में लगा दो
हम लड़ाई पर खड़े हैं
ठोस मुद्दों पर अड़े हैं
तुल गये हैं जेल भरने के लिए
इस हाल पर हैं।

अब न ये जत्थे रुकेंगे
अब न ये बैनर झुकेंगे
हर सिपाही जोश में है
और पूरे होश में है
किन्तु जो खामोश है उनके लिए
भूचाल पर हैं।

आग ये आसमान की है
आन की है, बान की है
आग ये इमान की है
हर दुखी इन्सान की है
मुट्ठियों की आग के तेवर
हमारे भाल पर हैं
आज हम हड़ताल पर हैं।

(जनयुग)

राह आगे खुलेगी!

□ मुंशी

आगे
अभी और आगे
वहां पर
अंधेरा छटेगा
लहू भी गिरेगा जहां पर—
वहीं, हां वहीं
बात आगे खुलेगी!
यहां क्या
यहां अपने से
अजनबी हैं,
अंधेरे में पाकर
यहां के सभी हैं।
यही शान है, आन
खोटी खरी तो
वहीं पर खुलेगी!

गिरा कोई पीछे
गिरा, तो गिरा वह,
गजब मौत की चाल की
यह नयी राह,
नयी जिन्दगी से
शहादत के मंडप में
भांवर पड़ेगी!
आगे
अभी और आगे
वहां पर
लहू भी गिरेगा जहां पर—
वहीं, हां वहीं
राह आगे खुलेगी!

(जनयुग)

फिर अगली रुत की फिक्र करो
जब फिर इक बार उजड़ना है
इक फस्ल पकी तो भर पाया
जब तक तो यही कुछ करना है
—फ़ैज अहमद 'फ़ैज'

घन-पुरुष के प्रति

□ चचल चौहान

धौंकनी की फूक से
जब लोहा लाल होता है।
उस समय तगड़ी भुजाओं से
हुई घन मार से
पिटता हुआ दिक् काल होता है
कि कमाल होता है।
हम जानते हैं श्रम के बिन्दु का भी मूल्य।
लोहा बदल कर
वस्तु बनता है
ओ घन-पुरुष !
तुम्हारा पराक्रम ही
इतिहास खनता है
सब टूटता है
जो कुछ झूठा वाग्-जाल होता है।
कि कमाल होता है
हम जानते हैं सत्य के सिन्धु का भी मूल्य ।

(प्रतिबद्ध कविता—२)

झुग्गी वालों का गीत

□ इब्बार रब्बी

हम पच्चीस साल से दरवाजे पर खडे हैं
किरायेदार अदर पसरे पडे हैं
तुमने तो कहा था—
"आओ इस किरायेदार को निकालें
तुम्हारा मकान तुम्हे मिलेगा"
हम उससे भिड, नब्बे साल तक लडे
और निकाल कर ही माने,
अब हमारा ही प्रवेश निषेध क्यो ?
क्या फक है नये और पुराने किरायदार म
हमें तो नही सौंपा उसने हमारा घर।
जब उसका सामान जा रहा था
तुम्हारा आ रहा था
हम उसका बिस्तर लाद रहे थे
तुम्हारा ढो रहे थे
हम तो नही थे सफेद खादी मे सलामी लेते हुए
हम तो नहीं थे बगुलो की तरह सत्यमेव जयते रटते हुए
हम पच्चीस साल स वही के वहीं खडे हैं
अपने ही सीने मे खूटे की तरह गडे हैं।
हम अधिक अन्न उपजा कर टाप रहे हैं
तुम उपवास के चमत्कार समझा रहे हो
हम उत्पादन बढा कर हाँफ रह हैं
तुम तस्कर निर्यात चमका रह हो
हम पेट पर डिग्रियाँ लाद रहे हैं
तुम योजना के घोड हाँक रहे हो
हम मोर्चे पर दम तोड रहे हैं
तुम वीरचक्र उछाल रहे हो

हम मातृभाषा म खोज रह हैं
तुम अंग्रेजी म मुस्करा रहे हो
हम कत्तव्यों म डब रह हैं
तुम अधिकारा मे नहा रहे हो
तुमने भाषण दिया हमने सुना
तुमने वोट मागा हमने दिया
बदने मे हमने कुछ नही लिया
तुमने हमार लिए कुछ नही किया
हम पच्चीम साल से इन्तजार मे खडे हैं
हलुए की कडाही मे भुनगे-से जडे हैं
हर बार सुबह धोखा होता है
जो अपना बन कर आता है
वही लाठी गाली बरसाता है
जिसे भी सौंपत ह अपना विश्वास
वही हमार खिलाफ चालान लेकर आता है
नही चुभते तुम्हारी आख म 'डिफेंस' और 'कैलाश'
हमारी झुग्गी गिराने आते हो बार-बार
पाच साल में एक बार करते हो नमस्त
फिर दरवाजा बन्द भीतर से
कब तक खडे रहें जनवरी म ठिठुरते
जून मे जलते, जुलाई मे भीगते
कब तक पडे रह
सदियो से मिला नही प्रवेश
सदियों से सोय नही, हसे नही
बद हैं खिडकियाँ ड्योढी तक म घुसे नही
खड खड सूज गय पाव
आखें हुइ फीलपाव
हम पच्चीस साल से वही के वहीं गडे हैं
अपनी ही दहलीज पर परायो की तरह पडे हैं।

(युग परिबोध)

दर्द का ज्योतित गर्जित समुन्दर

□ खगेन्द्र ठाकुर

उन्होंने चाहा था
आदमी के दर्द की मीनार पर
अपनी शान का दीपक जलाना,
किन्तु आदमी का दर्द
नहीं होता ईंट या पत्थर का टुकड़ा,
वह होता है उत्तप्त तरल जीवन रस,
जो बह-बह कर,
मिल मिल कर एक दूसरे से
एक दिन समुन्दर बन जाता है।
हमने देखा उस दिन
आदमी का दर्द होता है लाल,
पूर्व क्षितिज उगते सूरज की तरह,
आदमी के खून की तरह,
खून जब बहता है, तो रंग लाता है,
दर्द जब उठता है तो कहर ढाता है
और दर्द चल पड़ता है तो तूफान लाता है।
हमने देखा उस दिन
सूर्य किरण से आलोकित
आदमी के दर्द का लाल समुन्दर
चला आया था उमड़ता राजपथ पर।
वह दर्द जिस पर न जाने
कितनी गोलियां दगीं,
वह दर्द झोंका गया जिसे लहकती आग में,
वह दर्द जो हर चोट, हर आघात के बाद
अधिक जीवन्त अधिक धारदार
बन कर निकला।
तुमने देखा

रक्तिम समुन्दर आया था
उस दिन तुम्हारे द्वार,
बढ़ गया है आगे
वह तुम्हें देकर डाक,
रक्तिम समुन्दर आया था
मानो समय का सूर्य आया था,
अपनी लाल किरणों से
चमकती रेखाएं खींच कर
बना गया है रास्ता तुम्हारे चलने का,
तुमने देखा उस दिन
एक दर्द जब दूसरे से मिलता है
तो करुणा नहीं ज्योति पैदा होती है,
और उस दिन जो आया ज्योति समुन्दर
वह ले जायेगा तुम्हें उस जंगल के पार तक
वह ले जायगा तुम्हें मुक्ति के द्वार तक
हमने तो देखा यह भी कि
ज्योति का उमड़ता समुन्दर देख कर
भाचक थी हवा, भौंचक था आसमान
जो वहां बैठ कर इतिहास के कचरे पर
मायूस, चिन्तित सहला रहा है
अपने चेहरे की कुटिल रेखाएं,
स्तब्ध है वह सोच कर
कि इतिहास में नहीं हुआ है
ऐसा कोई अगस्त्य
पी जाए जो
वह दर्द का ज्योतित, गर्जित समुन्दर
जिसने पानी की चमक छा गयी है
अनगिनत आदमियों के चेहरों पर।

(जनयुग)

दर्द का ज्योतित गर्जित समुन्दर

□ खगेन्द्र ठाकु

उन्होंने चाहा था
आदमी के दर्द की मीनार पर
अपनी शान का दीपक जलाना,
किन्तु आदमी का दर्द
नहीं होता ईंट या पत्थर का टुकड़ा,
वह होता है उत्तप्त तरल जीवन रस,
जो बह-बह कर,
मिल मिल कर एक दूसरे से
एक दिन समुन्दर बन जाता है।
हमने देखा उस दिन
आदमी का दर्द होता है लाल
पूर्व क्षितिज उगते सूरज की तरह,
आदमी के खून की तरह,
खून जब बहता है, तो रंग लाता है,
दर्द जब उठता है तो कहर ढाता है
और दर्द चल पड़ता है तो तूफान लाता है।
हमने देखा उस दिन
सूर्य किरण से आलोकित
आदमी के दर्द का लाल समुन्दर
चला आया था उमड़ता राजपथ पर।
वह दर्द जिस पर न जाने
कितनी गोलियां दगीं
वह दर्द झोंका गया जिसे लहकती आग में,
वह दर्द जो हर चोट, हर आघात के बाद
अधिक जीवन्त, अधिक धारदार
बन कर निकला।
तुमने देखा

रक्तिम समुदर आया था
उस दिन तुम्हारे द्वार,
बढ गया है भाग
वह तुम्हे देकर डाक,
रक्तिम समुदर आया था
मानो समय का सूय आया था,
अपनी लाल किरणा से
चमकती रेखाए खीच कर
बना गया है रास्ता तुम्हारे चलने को,
तुमने देखा उस दिन
एक दद जब दूसरे से मिलता है
तो करुणा नही ज्योति पैदा होती है,
और उस दिन जो आया ज्योति समुन्दर
वह ले जायेगा तुम्हे उस जगल के पार तक
वह ले जायगा तुम्हें मुक्ति के द्वार तक
हमने तो देखा यह भी कि
ज्योति का उमडता समुदर देख कर
भाचक थी हवा, भौंचक था आसमान
जो वहा बठ कर इतिहास के कचरे पर
मायूस, चिंतित सहला रहा है
अपने चेहरे की कुटिल रेखाए,
स्तब्ध है वह सोच कर
कि इतिहास मे नही हुआ है
ऐसा कोई अगस्त्य
पी जाए जो
वह दद का ज्योतित, गजित समुदर
जिसके पानी की चमक छा गयी है
अनगिनत आदमियो क चेहरो पर।

(जनयुग)

मार्क्स के प्रति

□ अजय तिवारी

मार्क्स ? तुम अभी जिंदा हो
अपने विवेक और कटुतम संघर्षों में
तुम्हें आज भी
देश निकाला दे सकते हैं वे लोग
कि उन लोगों के लिए
तुम्हारा अर्थशास्त्र
पत्थर की तरह भूलता रहता है
और गूंजता रहता है उनके कानों में
और चीखता रहता है एक शोर
वे लोग तुम्हारी पुस्तकें पढ़ने वाले
बुद्धिजीवियों को कैद कर सकते हैं
चिली देश की तरह
और तुम्हारी पुस्तकें जला सकते हैं
वे लोग
कुछ भी कर सकते हैं
अपनी झुकती हुई रीढ़
धनुष की तरह ताने रहने के लिए
कुछ भी कर सकते हैं वे लोग
उन्हें डर है कि कहीं
उनके चेहरे
तुम्हारे विवेक की आंच में
झुलस न जाएं
सचमुच डरते हैं वे लोग
तुम्हारे नारे पर इकट्ठा होते हुए
देश और देशों के मेहनतकशों से
और तुम
उन्हीं लोगों में जीवित हो
जीवित हो आज भी !

(जनयुग)

एक विश्वास की हत्या

☐ भारत भारद्वाज

क्या फर्क पडता है
'क' के 'ज' मे बदल जाने से
रामू आज भी दफ्तर की खाक छानता फिरता है
बदूकें आज भी
उगलती हैं गोलिया उसी रफ्तार से
गाडियो की रफ्तार भी वही है
तुमने भूल की थी सडक की चौडाई देखकर
अस्पताल के गेट पर पहुचकर दम तोडने से ही
क्या यह साबित हो जाता है कि डाक्टर ड्यूटी पर नहीं था
भूख से तुम्हारी मौत हुई या बीमारी से
इसका क्या है सबूत तुम्हारे पास ?
क्या तुमने नही सुना
गरीबी ने सावजनिक घोषणा कर दी है
देश छोडने की
और लाल किले से फिर ऐलान हुआ है
दूसरी आजादी का !
क्या फर्क पडता है
सुननी पडी यदि झिडकी
आज भी तुम्हे अपने बास की बीवी से
या श्याम लाल गुप्त मर गये
देश का झडा नही झुका !

नवसाम्राज्यवादियों के नाम

□ मोहन श्रोत्रिय

तुम्ह पता है वहा की दूब की/नोक कितनी चमकती थी
फसलें कैसे लहराती थी/स्कूल जाते बच्चे कितने सुन्दर
लगते थे !!

तुम्ह लोगो का खुश रहना/अपने रास्ते चुनना
असह्य हो जाता है अक्सर/बार बार
इतिहास गवाह है और तुम/इतिहास को नकारने पर तुले हो
शाति के नाम पर/भेडियो से शाति की बातें
सुनकर अब अचरज नही होता/लुच्चों की अतिम शरण
नतिकता/होती है ।
हमे पता है तुम्हारे/अस्त्रागार
कभी खाली नही होगे न बद होगा/नये बाजारो मडियो की तलाश
का सिलसिला बढती ही जायेगी
दिन रात हथियारो की पैदावार
अनाप शनाप/स्वतन्त्रता की (देवी की) प्रतिमा
तुम्हारा एक मुखौटा है जिसे/चीर कर दिया है तुम्हारी हरकतो ने
वियतनाम, क्यूबा, बोलिविया/चिली, कबोडिया
बागलादेश और अगोला तुम्हारे/वहशीपन के कीर्ति स्तम्भ हैं ।
जिस तरह धम को खतरे में/बताकर
पडे और मौलवी/लोगो के गावदूपन का फायदा
उठाते हैं तुम डर/दिखाते हो लुटेरों को
शोषण के खत्म हो जाने का/उन्ह सगठित करते हो
जासूस छोडते हो/दगे करवाते हो
और
अचानक सरकारें पलट दी जाती हैं/प्रतिरोध होने पर
छटा बेडा सातवा बेडा एटम जहाज/बम और सगीनें
बम और सगीनें/जिस्म के टुकडे कर देती हैं
बेशक/मनोबल नही तोड पाती/यह तुमने देख लिया है समझ

नहीं पाये हो
मनोबल जो माटी की गंध से/पैदा होता है पनपता है इन्सानी
बराबरी और लक्ष्य निष्ठा/जिसे सींचती है तुम्हारी
बहशियाना हरकतें जिसे मजबूत/करती हैं [illegible]
तुम्हारी नसें हर वक्त तनी रहती हैं [illegible]
बंदूक और मशीन चलाने में कोई/काम फर्क नहीं
तुम्हारी बर्बरता ने किशोरों का/पकबयक युवक बना दिया
दस प्रतिशत आग्नायान्/नारियों की कोमलता बदल
गयी फौलादी साहस में बूढ़ों की शिराओं में [illegible]
प्रवाहित होने लगा/और इसीलिए
माटी के लौंदे तुम्हारे सैनिक/स्वदेश लौटने को [illegible]
हो उठे अब तो तुमने यह भी सुन ही लिया
होगा कि कटीली झाड़ियां/उगने लगी हैं वहां [illegible]
(खून की खाद अपना रंग तो दिखलाती ही)
इतनी कटीली कि/संगीनों को भेद जाए
युद्ध के (तुम्हारे) सारे अत्याधुनिक/साजो-सामान [illegible]
पर लानत फेंक दी उन्होंने/उनके मनोबल ने
मनोबल जिसे तुम कुचल नहीं पाये/[illegible]
नये स्थल/लड़ाई के
ऐसे मुल्क जहां के लोगों/का मनोबल [illegible]
या जिन्हें तुम्हारा डालरकमीना [illegible]
तुम्हारी यह इच्छा कि जहां [illegible]
यहां वहां बस्तियां स्कूल [illegible]
में बदल जायें/अब पूरी नहीं [illegible]
ताकत का जवाब ताकत [illegible]
इकट्ठे हो रहे हैं एशिया [illegible]
और लातीनी अमरीका [illegible]
एक साथ

आदमी का दर्द

□ देवेंद्र उपाध्याय

सूने पहाड के जिस्म को
रौंदता कोहरा
बरसाती नदी की तेज धार म
सरपट भागत रपटीले पत्थर
और पत्थर
दूर कही आसमान म चमकती
बिजली
याद !
बौनी हो जाती है
हर बार चीड बनी हवाओ मे ठिठुरता
मौसम का हर पल (बच्चो की तरह)
रात की खामाशी
बार बार टूट जाती है
दूर खडे सहमे जगल
मार गया
कोई धारदार नोकीले हथियार से
रिसता हुआ हर पेड का दद
आदमी के दर्द के
बहुत पास चला आता है।

□□□□ चौथा खंड

गुणान्तर—एक



□□□ ' किसी शुभ बीज भाव की प्रेरणा से प्रवर्तित तीक्ष्ण और उग्र भावों की सुन्दरता की मात्रा उस बीज भाव की निर्विशेषता और व्यापकता के अनुसार होती है। जैसे, यदि करुणा किसी व्यक्ति की विशेषता पर अवलंबित होगी—कि पीड़ित व्यक्ति हमारा कुटुंबी, मित्र आदि है—तो उस करुणा के द्वारा प्रवर्तित तीक्ष्ण या उग्र भावों में उतनी सुन्दरता न होगी। पर बीज रूप में अंतस्संज्ञा में स्थित करुणा यदि इस ढब की होगी कि इतने पुरवासी इतने देशवासी या इतने मनुष्य पीड़ा पा रहे हैं तो उसके द्वारा प्रवर्तित तीक्ष्ण या उग्र भावों का सौन्दर्य उत्तरोत्तर अधिक होगा। यदि किसी काव्य में वर्णित दो पात्रों में से एक तो अपने भाई को अत्याचार और पीड़ा से बचाने के लिए अग्रसर हो रहा है और दूसरा किसी बड़े भारी जनसमूह को, तो गति में बाधा डालने वालों के प्रति प्रदर्शित क्रोध के सौन्दर्य, के परिणाम में बहुत अन्तर होगा।

—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

□□□ 'आज का कवि तब तक अपनी चेतना का संस्कार नहीं कर सकता तब तक वह वस्तुतः आत्मचेतस हो ही नहीं सकता, जब तक वह विश्वचेतस् न हो। इसी बात को हम दूसरे शब्दों में इस प्रकार कहेंगे कि कवि हृदय आज के जगत के मूल द्वंद्वों का अध्ययन करें अर्थात् अपनी सम्पूर्ण चेतना द्वारा आज की वास्तविकता की तह में घुसे और ऐसी विश्व दृष्टि का विकास करे, जिससे व्यापक जीवन-जगत की व्याख्या हो सके और अंतर्जगत के महत्वपूर्ण आन्दोलनों का बोध हो। तभी उसका विषय-संकलन सम्बन्धी विवेक भी अधिक पुष्ट होगा। तभी हम आसपास फैली हुई मानव वास्तविकता के मार्मिक पक्षों का उद्घाटन और चित्रण कर सकेंगे × × × उस बौद्धिक प्रतिभा के फलस्वरूप संवेदनात्मक ज्ञानात्मक संवेदन अधिक पुष्ट होंगे और अनुभूति का ज्ञान प्रेरणा प्राप्त होती जाएगी।"

—मुक्तिबोध

बात सिर्फ इतनी है

☐ वेणु गोपाल

आप
बैठे हो। खड़े हो। लेटे हो। हाथ
बढ़ायें। या न बढ़ायें। हरेक हालत में
उस
काली जंजीर को महसूसा जा सकता है। छुआ
जा सकता है। जो
पंखों में भी। खोपड़ी में भी।
कुण्डली मारे है और थोबड़े पर भी।—फिर भी
आप
बुद्धिजीवी किस्म की कोई चीज होने की वजह से
मासूम बने रहेंगे। पूछेंगे—
आखिर इस सारी छटपटाहट का
संदर्भ क्या है? और प्रासंगिक? बात
सिर्फ
इतनी है मित्र कि आप हैं और जंजीर हैं और
ऐन सिर पर
बगावत के बादलों की गड़गड़ाहट है। क्योंकि
करोड़ों
बर्फ—निगाहें अब धधकने लगी हैं।
कमान-पीठों ने बोरे गिरा दिये हैं और तन कर
सीधी हो गयी हैं।
लुजपुज भिखारी हाथ फौलादी घूसों में
बदल गये हैं।
सारा निरीह गाय वजूद मरने मारने को
कसमसाने लगा है।

मैनचेस्टर
जायें भाड़ में। उन लोगों को देखिए। वे
पत्थर भी फेंकते हैं। तो जंजीर की एकाध कड़ी
चिटक जाती है और—बिना लाल किले के
और बिना
प्रधान मंत्री के भाषण के
पंद्रह अगस्त हो जाता है।

''धूमिल''

> कौन आज़ाद हुआ
> किसके माथे से गुलामी की सियाही छूटी
> मेरे सीने में अभी दर्द है महकूमी का
> मादरे हिन्द के चेहरे पे उदासी है वही।
>
> □ अली सरदार जाफरी

अपना बघवा

□ ज्ञानेन्द्र पति

मालिक के लड़के बघवा के नाम पर हँसते उसे रोड़ो से मारते और पुकारते
हाय रे बाघ ! मिमियाता भी नही है ! बघवा उसी तरह गोहाल था
नाला साफ करता मुस्कराने की कोशिश करता लेकिन इस कोशिश में
उसके उपरले उठे होठ के नीचे से झाकते मसूढ़े और भी
निरीह हो उठते
मालिक यानि मुखिया जी अक्सर उसे झिड़कते स्साले तू
पच का पुत्तर हाके भी इत्ता बोदा काहे है और अट्टहास करते
बघवा का बाप दुसाध टोली का मुखिया था पचायत के चुनाव म
वह पच के लिए खड़ा हुआ था मालिक ने उसकी पीठ ठोकी थी लेकिन
उसे अपने टोले के भी वोट नही आये ऐसा क्यो हुआ यह कभी
न मुखिया जी समझ पाये न बघवा का बाप इसके बाद
मुखिया जी अक्सर बघवा के बाप को गरियाते स्साले तू कमनाशा मे
नहा के आया है
फिर जब बघवा के बाप को हफनी हो गयी बघवा ही काम पर आने
लगा बघवा का बाप अपनी झोपड़ी के सामने बैठा दिन भर कुत्ते की तरह
हाफ्ता रहता कभी कभी मालिक के दुआर पर आता और बघवा को
उसकी सुस्ती के लिए हुमच कर लताड़ता अरे मुड़गिरवा साला
मालिक का नीमक तो सधाओ
बघवा के होठ उसी तरह खुले रहते उसके झाकते मसूढे पर बेचारगी का रग
धीरे धीरे गाढा होता जाता और वह किसी दुबले प्रेत की तरह
काम करता हुआ भी गायब रहता उस दिन जब
कलेसरा की दादी उसे झिझोड़ने लगी वह कहा था वहा से आने और
यह समझने म उसे थोड़ा वक्त लगा कि उसका बाप
अब लाश हो गया है अपनी झोपड़ी के सामने उकडू पड़ा और उसके
हाफने के लिए अब तक खुले मुह में बेटे के बहाने पूरी दुनिया के लिए एक

गाली अटकी हुई है
'जिस दिन इस गांव का सबसे बड़ा अचरज घटा उस दिन भी बधवा के
खुले मसूड़ों पर दीनता की वही ललछौंत चमक थी बल्कि कुछ
अधिक गाढ़ी   माय के इलाज के लिए मालिक से वह एक रुपया
लेने आया था जिसे मुट्ठी में दबाये जब वह दुआर से उतर रहा था तभी
वह घटा था जिसकी वजह की अटकलें गांव के लोग अभी तक लगाते हैं
मुखियाजी ने अपनी आदत के मुताबिक उसे हुड़काया था
अरे सुन मादर—गलिया शब्द उनके मुंह में घुटकर रह
गये थे   लोगों ने बधवा की पलटती काली पीठ देखी थी और
उस पर चमकती पसीने की धारियां   मालिक सुन होने
से पहले भी उसके उठे पंजे के बदले क्रोध को नहीं समझ पाये थे न
उसके खुले मसूड़ों पर उपलायी खूंखार चमक को जमीन पर
गिरने के पहले बधवा के कंठ में फंसी गुर्राहट भी केवल
उन्होंने ही सुनी थी।

उत्तराध—६

जरा हिन्द में रुख हवाओं का देखो,
जो मुमकिन हो तो वक्त की नब्ज परखो।
वो हो जेल, गोली हो, फांसी हो, जो हो,
यह इनकलाब आया, आया ही समझो।

रघुपति सहाय 'फिराक'

वापसी

□ मोहदत्त

एक लम्बे अर्से बाद,
अपने घर में वापसी,
कितनी अच्छी लगती है,
और कितनी कुरेदती सी,
इसका अहसास मुझे हुआ,
जब मैंने अपने चेहरे की,
झुर्रियों को, तपती हुई भूड की,
रेतीली दरारों में देखा।
जब फूस पतील के झूड में से,
निकल कर जलती हुई रेत पर,
एक खरगोश सरपट दौड़ा।
मुझे लगा वह मेरा बचपन था।
तब रेत के कण जलते हुये,
मेरी आंखों में चुभने लगे थे,
और एक कहानी बनने लगी थी।
सब कुछ वैसा ही, उतना ही पुराना,
जर्जर टूटा टूटा सा, गिरागिरासा,
वैसा ही ऊबड़ खाबड़ खेत,
दूर कहीं सूखा सा बरगद का पेड़
वही जाने पहचाने, भूले बिसरे से,
मटमले जिस्म, बच्चे औरतें।
इतने लम्बे अर्से में—
सब कुछ बदल जाना चाहिए था,
मगर जख्म अभी हरे हैं।
एक मुट्ठी दाना का उगाने के लिये,

गाली अटकी हुई है

'जिस दिन इस गाव का सबसे बड़ा बवडर पडा उ
खुले मसूडो पर दीनता की वही सनातन चमक थी
थधिक गाढ़ी   गाय के इलाज के लिए मालिक ने
नने आया था जिस मुट्ठी में दवाये जब वह द्वार
वह पडा था जिसकी वजह से मटकने गाव क ना
मुखियाजी न अपनी आदत के मुताबिक उसे हरा
अरे सुन मादर—गालिया शब्द उनके मुह में घुटक
गये थे   लोगों न पता की पलटती बातों पीठ
उस पर चमकती पसीने की धारियां   मालि
के पहले भी उसके उठे पजे के बनते कोध का न
उसके खुले मसूडो पर उपलायी सुरमार चमक
गिरने से पहले बघवा के कठ में फसी गुर्राहट
उन्होंने ही सुनी थी।

जरा हिन्द म हस्त हवाओ ा
जा मुमकिन हो तो बदल ी
वा हो जेल, गोली हो, फासी
यह इनकलाब आया आया ह
● रघुपति

ठेकेदार भाग लिया

☐ अशोक चक्रधर

फावड़े ने मिट्टी काटने से इंकार कर दिया
और गरपुर पर जा बैठा
एक ओर
ऐसे में तसले का मिट्टी ढोना
कैसे गवारा होता
काम छोड़ आ गया फावड़े की बगल में
दुरमुट की कदमताल रुक गई
कुदाल के इशारे पर तत्काल,
झाल ज्योंही कुदती हुई, रोती बडबडाती हुई
आ गिरी औंधे मुंह
रोड़ी के ऊपर।
'आखिर ये कब तक?
कब तक सहेंगे हम?
गुस्से में ऐंठी हुई
काम छोड़ बैठ गई
गुनिया और बसूली भी
ईंटों से पीठ टेक
सिमट आया नापासूत, कन्नी के बराबर।
'आखिर ये कब तक?
कब तक सहेंगे हम?
गारे में गिरी हुई बाल्टी तो
वहीं की वहीं खड़ी रह गई
ठगी सी।
धंसी हुई बालू में
सब्बल अड़ी खड़ी थी

वैसी कड़ी मेहनत मजूरी,
वैसा ही बदबूदार पसीना।
वही बाजरे की रोटी और साग।
वही अंधी कुइया का पानी।
लगता है कुछ नहीं बदला।
जहन में यादों की ताजा,
खरोंच—वही दर्द अपना सा।
लगती है सपना सा,
अपने घर में वापसी।

वही फौजें, वही संगीनें, वही शमशीरें,
वही जल्लाद, वही दार वही जंजीरें।
जख्म सीने का हँसी में न छिपाओ हमसे,
रहबरो, आज निगाहें तो मिलाओ हमसे।

● कैफी आजमी

ठेकेदार भाग लिया

□ अशोक चक्रधर

फावड़े ने मिट्टी काटने से इन्कार कर दिया
और घन्रपुर पर जा बैठा
एक ओर
ऐसे में तसले को मिट्टी ढोना
कैसे गवारा होता
काम छोड़ आ गया फावड़े की बगल में
दुरमुट की कदमताल रुक गई
कुदाल के इशारे पर तत्काल,
डाल ज्योंही कुढ़ती हुई, रोती बड़बड़ाती हुई
आ गिरी औंधे मुंह
रोड़ी के ऊपर ।
'आखिर ये कब तक ?
कब तक सहेंगे हम ?
गुस्से में ऐंठी हुई
काम छोड़ बैठ गई
गुनिया और बसूली भी
ईंटों से पीठ टिका
सिमट आया नापासूत, करनी के बराबर ।
'आखिर ये कब तक ?
कब तक सहेंगे हम ?
गारे में गिरी हुई बाल्टी तो
वहीं की वहीं खड़ी रह गई
ठगी सी ।
धंसी हुई बालू में
सब्बल अड़ी खड़ी थी

कई बार जालिम ठेकेदार से लड़ी थी
'आखिर ये कब तक ?
कब तक सहेंगे हम ?'
'मामला ये अकेले फ़ाल का नहीं है
घुरमुट चाचा !
कुदाल का भी है
करनी का, बसूली का
गुनिया का, नब्बल का
और नापासूत का भी है।
क्यों घुरमुट चाचा ?' फावड़े ने
जरा जोश से कहा।
और,
ठेक पड़ी हथेलियां
कसने लगीं कसती गईं
एक साथ उठी आसमान में
आसमान गूंज गया
कांप उठा डर कर
ठेकेदार भाग लिया टेलीफोन करने।

पहल ५

शहनामे लिखे हैं खंडरात की हर ईंट पर
दफन है हर कब्र में अफसाना तेरे शहर में

° ° ° °

जुर्म है तेरी गली में सिर झुका के गुजरना
कुफ्र है पथराव से घबराना तेरे शहर में
—कैफी आजमी

हम इतिहास के बेटे हैं

☐ पंकज सिंह

एक कसे हुए ढोल की तरह बजायी गयी
दुखों से भरी हुई हमारी आत्मा
मार खाती रही पीठ और रोंदी आंखें
समयहीन संस्कृति में एक भूरी उदासी भोगती रही
पानी हो रहा है हर तरफ पुराने ईमान का नमक

इस बढ़ते हुए तापमान में बचाओ कुछ जरूरी चीजें
अगर बचा पाओ
बचाओ स्वाधीनता जो हरियाली है यादों में बची
बचाओ एक कोंपल जो विपरीत मौसमों के खिलाफ अड़ी है
भीतर कहीं आहटों से थरथराती हवा में
चुप्पियां में दबी चीखों तक जाने दो दौड़ते हुए खून को
और फिर वही तुम्हें कहेगा
कि अब कुछ भी बचा पाने के लिए
इरादों और हाथों को एक जगह इकट्ठा कर
उन्हें देना है एक शब्द—'हमला'

बटोरो एक बार अंधेरे में गुम होते हुए सपनों को
अपनी मानवीय लालसाओं को रोशन करते हुए
पोंछो उनके चेहरे से गर्दो गुबार
कहा तुम आदमी हो और आदमियों की तरह जीना चाहते हो
खुदा कसाइयों के खिलाफ लड़ते हुए

हम इतिहास के बेटे हैं अपनी मिट्टी की सुगन्ध
हम नींद को गुंजाती जाग हैं
हम अंधेरे और जंगल में फैलती हुई आग हैं

"आलोचना"

यात्रा

□ अरुण कमल

रात के अंधेरे मे दौड़ती जाती है पंजाब मेल

खिड़कियों से छुट-छुट कर गिरते हैं रोशनी के पट्ट
हवाएं लौह झर्झरियों सी बजतीं
हलहियियों की आड़ मे बगलगीर मुसाफिर ने सुलगायी माचिस
और उघारती गयी की चेहरे के अनगिनत रहस्य—
कलकत्ते के कारखाने म बहाल
जल भर गा एक मजदूर
जा रहा है वापस फिर काम पर
छूट गया है मुल्क बहुत दूर
बस तलवों मे बाकी है थोड़ी सी धूल पंजाब की।

दौड़ती जा रही है पंजाब मेल
पच्छिम से पूरब, पच्छिम से पूरब—

"पंजाब तो बहुत खुशहाल है, निहाल सिंह ?
सुनते हैं वहां लोग दूध और मठठे से तर हैं,
निहाल सिंह ?
फिर तुम क्यों जाते हो पश्चिम बंगाल,
बोलो निहाल सिंह ?"

'कौन नहीं चाहता जहां जिस जमीन से उगे
वहीं की मिट्टी बन जाय,
पर बोनट नहीं तपता हुआ रेत ही है घर तरबूज का
जहां निभे जिंदगी वही घर वही गांव।"

फैलता जाता है धुआ
लोहे की छातियो को धोता जाता है धुआ,
खिडकिया से झाकता है पजाबी मजदूर
दूर अधकार, गहन गसा अधकार
कही कही बसे हुए रोशनियों के परिवार
और यहा पजाबियों से भरा हुआ डिब्बा !

पजाबी मर्द, पजाबी लडकिया—औरतें, बच्चे
सब के सब जा रहे है वापस फिर काम पर,
ये परिवार मजदूरो के
जूट कारखानों के, लौह कारखाना के
कोई नही जानता कब बद हो जायेंगी कौन सी मिलें
किनकी होगी छटनी, किनकी कटेंगी तनखाहे—

सब रह गये थे घर पर दो एक दिन फाजिल।

जनयुग,

उठो मेरी दुनिया के गरीबा को जगा दो
काखे उमराह के दरो-दीवार हिला दो
जिस खेत से दहका को मयस्सर हो न रोटी
उस खेत के हर गोश ए गदुम को जला दो
—मोहम्मद इकबाल

मै केवल एक जल-आकार

□ आलोकधन्वा

मैं उसका मस्तिष्क नही हू
मैं महज उस भूखे बच्चे की आंत हू ।

उस बच्चे की आत्मा गिर रही है ओस की तरह ।

जिस तरह बांस के अखुवे बजर में तड़कते हुए ऊपर उठ रहे हैं
उस बच्चे का सिर हर सप्ताह हवा मे ऊपर उठ रहा है
उस बच्चे के हाथ हर मिनट हवा मे लम्बे हो रहे हैं
उस बच्चे की त्वचा कडी हो रही है
हर मिनट जसे पत्तियां बडी हो रही हैं

और
उस बच्चे की पीठ चौडी हो रही है जैसे कि पास
और
घास हर मिनट पूरे वायुमडल मे प्रवेश कर रही है ।

लेकिन उस बच्चे के रक्तसचार मे
मैं सितुहा भर घुघला नमक भी नहीं हू
उस बच्चे के रक्तसचार मे
मैं केवल एक जल आकार हू

केवल एक जल उत्तेजना हू ।

"पहल"—१

बाड़ा

□ चंद्रभूषण

साथी मैं बहुत दूर से आया हूं।

जिन्दगी के तमाम रास्ते गुफाओं से गुजरे
लेकिन कल तक मेरा सफर अधूरा था। अब
गांव की हर दीवार पर उभर रही है—
इबारत। पलस्तर उखड़ चुका है और
ईंटों की जगह चुना इतिहास बहुत साफ है।

यह गली—बैलगाड़ी की लीक है
यह सड़क—मोटरकार का निशान
यह पट्टी—यहां लोहे का हाथी दौड़ता है
लेकिन यह ज्यादती है—यात्रा का गलत भूगोल है

आदमी जंगल में है, जहां
कड़ी सर्दी में बाड़ के गिर्द जिन्दगी
सख्त कुहनियों पर सिर टिकाए
जाग रही है।।

वहां तुम्हारे शहर का पुल है,
नीचे से गाड़ियां गुजरती हैं ऊपर से रिक्शे
तुम वहां से शहर की शाम देखते हो और मैं
अपनी पत्नी व बच्चों के साथ
बगल की सीढ़ी से नीचे उतर जाता हूं।

यहां झोपड़ियां परेड के लिए तैयार हैं
लेकिन मुझे रिश्ता तय करना है

रामलाल मेरा पड़ोसी था गाव मे
वह सामने आकर मेरे झोले मे मुह डाल
चम्म चम्म करने लगता है
मैं उदास होता हू
सूअर बाड मे घिरे हैं य सब—आदमी।

यह काटो का पूरा झाड है
जा हर जगह फैला है।

रमजू का पूरा परिवार, गुलाम हुसैनी पत्रकार—
और तू भी यार इससे छलनी हो गया है
इसीलिए मैं यहा आया हू,

देख कितना—कच्चा कच्चा लोहा है
अपने गावा मे इसे ढालें
हथियारो—औजारो मे
जहा अनपढ इबारतें गढते हैं
अनाम साथी इकाई दर इकाई झाड से लडते हैं।

"जनयुग"

गरीब शहर के तन पर
लिबास बाकी है
अमीरे शहर के अरमां
अभी कहा निकले
—साहिर लुध्यानवी

इनकलाब !

☐ उदय प्रकाश

तुम जानते हो
वह आयेगा। कभी भी। शायद कुछ देर से।
शायद बहुत जल्द। फिर भी तुम जानते हो।
वह आयेगा। पक्का।

अगर तुम्हारी आख मे
तक की दूरबीन है तो तुम उसे देख सकते हो।
दूर। अधेरे चिथडे की तरह रोशनी का धब्बा।
आकाश के आईने म। शहर के तिरस्कृत मोहल्लो के
ऊपर। खदानो को तोडकर उठता हुआ। चिमनी के
धुए की कलाकृति। खेत की धूल का शिल्प।
वह एक धब्बा। जो हिलता है। डुलता है। बुझता है। उगता है।
किरणो का घटाटोप जगल।
रोशनी की रगीन मशालें हाथों मे थामे हुए।
तुम जिसे सुबह कहते हो !

वह आयेगा। तुम्हारी रग रग की आत्मा म
तुम्हारे रोयें रोयें के दिमाग मे
यह सच्चाई पैठ चुकी है। तुम अकेले के
ईमानदार क्षणो मे मान चुके हो
कि वह आयेगा।

उसके आने का फैसला हो चुका है। उसका आना
समय की धडकन मे अकित है। उसका आना
तुम्हारे होने से ज्यादा सच है। पेड से अधिक कद्दावर।
चट्टान से ज्यादा ठोस।

तुम्हारी तकलीफ और दर्द से ज्यादा सच !
तुम्हारी बीमार बेटी की एक दिन अचानक
मौत से अधिक सच ।
तुम्हारी जिन्दगी से ज्यादा सच !

तुम जानते हो कि आने पर वह देर से आने के लिए
माफी नही मागेगा ।
झेंपी हुई हसी नही हसेगा । बीबी के सामने
तुम्हारी हसी की तरह । वह तुम्हारा पढा हुआ
नक्शा बदल डालेगा । तुम्हारी देखी हुई चीजें इधर उधर
कर देगा । बच्चो का रग बदल देगा ।

सिपाही के डण्डे मे पीतल का गुट्टा नही
निब होगी । मजिस्ट्रेट की आखो में मा'रसाब का
चश्मा । सभव है तुम्हे बाद म कई चीजें गायब मिलें ।
जैसे स्कूल के सरल अक गणित से ब्याज के सवाल ।
जैसे आसू गैस । जैसे हत्या लूट बलात्कार सकटकाल ।
जैसे मैगजीन से रेहाना सुल्तान की नगी टाग । जैसे केटी मिर्जा
की उघडी छाती । जैसे इनकम टैक्स कमचारी ।

तुमने अपने बारे में सोचा है ? तुम उसे कहा मिलोगे ?
उसके आने के इन्तजार मे तैयार या
डर मे फरार । तुम किस सडक की कौन सी खदक मे होंगे ।
खिडकियो के परदे हटाते, दरवाजो को खोलते
या चाभी लेकर किसी कुए मे
अपने जुम मे डूबते ? तुम्हे उजाले मे अपना
चेहरा कसा लगेगा ? डरावना ?

अपनी गदन का तुम्हारे पास क्या मतलब होगा ?
दाम ? जुलूस के आगे आगे अपने उत्साह में
जिन्दा तुम्हारे कदमो की थरथराहट में कौन सा
सगीत होगा ?
तुम्हारे हाथों मे स्वागत होगा
या क्षमा याचना ?

तुम चाहते हो कि उसके बाद
तुम सफाई के शिकार न हो। तुम्हें धसके हुए मलबो
और कूड़ों के टीलो मे न गिना जाये। तुम्हें
नगर के बन्द और विषाक्त नाबदानो से न
जोड़ा जाय। तुम न गीदड़ों की जमात में शामिल
होना चाहते हो न भेड़िया की। तुम चाहते हो
कि तुम्हारी कविता वफादार दरबान का
कुत्ता थोरम्नापन न हो। तुम चाहते हो तुम्हारी भाषा के
गले मे किसी की नमकहारी का पट्टा न हो।

तो उठो। आने वाली सुबह को सलामी ठोको।

तयार हो जाओ। अपनी ईमानदार छेनी और
हमलावर हथौड़े की चोटों का
संस्मरण सहजो। उन्हें ठोस आकार की सार्थक
सच्चाई दो। रोशनी के खिलाफ दीवार का
एक एक पत्थर दरकाओ।
छेनी और पत्थर की मुठभेड को तरतीब दो। नोक से
शक्लें उभारो। कोई एक शक्ल।
जिससे लोग एकाएक चीख उठें—
"यही है—चंगेज खां!!"

अपनी सुविधा और संस्कार को छाती पर
बटन की जगह टांक लो। और फेफड़ो में
आने वाले वक्त की सांस भर कर

सीना फुला दो। बटन को टूटने दो।
अपनी देह मे भविष्य की ठण्डी फुरहरी
महसूस करो।

(जनयुग)

रक्तप्रवाही मोड़

☐ डा० श्यामसुन्दर मिश्र

उदास औरतो भूखे बच्चो
और चिल्लाते पुरषो के
आगे खडी तनी मुटिठयो के
चेहरे आज भी वही हैं
जो कल इनके साथ थे।
एक पूरी की पूरी अधेरी—
घाटी की भयावहता,
और अकेले घिर जाने की
छटपटाहट के रहते सभी लोग
एक दूसरे को पहचानने के
सकट से ग्रस्त थे, और आज भी—
आदमी को पहचानने की
ललक के साथ उदास हैं।
एक पूरी शताब्दी तक
आदमी के सही अर्थ की तलाश
इस गहरे पानी से
घिरे उपमहाद्वीप के—
भीतरी हिस्सो म
जुडे आदमी के आदमी से
लाखो सवाल
आसन्न सकट के समय
एक दूसरे के हाथ टटोलते मौजूद हैं।
उसी तरह—नारे लगाते लोग
उसी तरह—व्यवस्था बदलने के
मौजूद आश्वासन,
उसी तरह आदमी को बाटने के
घातक षडयत्र और उनके बीच
सत्ता की अपनी तिरछी
हो रही मुटिठयो म
मजबूत जकड के साथ
बद करने की कोशिश।

कुछ भी तो नही बदला
हरे भरे वृक्ष के नीचे
खड भेडिया के स्थान पर—
डालियो मे लटकी
चमगादडो के सिवाय
और किसी गहरे
आतरिक आश्वासन के
पैदा होते ही लोग
इस पूरे चल रहे नाटक
और दृश्य परिवर्तन मे
भीड के रूप मे मौजूद थे
नये नाटक के पटाक्षेप के साथ ही
एक मनोरजक एकाकी की तलाश मे
पहले से अधिक व्याकुल होकर
भटक रहे हैं। यह भटकन!
यह सबध तलाशने की पीडा!
पानी के खारे स्वाद के बाद
उठ रहे ज्वारो की व्याकुलता
और आक्रोश के साथ मिलकर
पूरे इतिहास की
शमनाक अमानवीय त्रासदी क
कामदी बनते जाने के कारण
हास्यास्पद होती जा रही है।
समय जो अनन्त
और अपरिमित विस्तार की
भयावह दुर्गन्त सकटापन्न
व्याख्या म काल खड नही है
आज भी गहरे सच के अहसास
और नगे आदमी की ठड और
कोहरे म अकडने वाली देह
एक नये रक्त प्रवाही मोड पर
उपस्थित है।

□□□□□ पांचवां खंड

गुणान्तर—दो

□ नीलकंठ

□ बरयाम नेगी

□ प्रणय रंजन

□ दिविक रमेश

□ अक्षय उपाध्याय

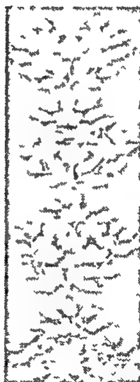
□ चारुमित्र

□ गोविन्द श्रीवास्तव

□ राजेश जोशी

□ प्रभाती नौटियाल

□ सुरेश शर्मा



□□□ "आज ऐसे कवि चरित्र की आवश्यकता है, जो मानवीय वास्तविकता का बौद्धिक और तात्त्विक आकलन करते हुए सामान्य जना के गुणा और उनके सघर्षों से प्रेरणा और प्रकाश ग्रहण करे, उनके संचित जीवन विवेक को स्वय ग्रहण करे तथा उसे और अधिक निखारकर कलात्मक रूप मे उन्ही की चीज का उन्हे लौटा दे"

□ मुक्तिबोध

□□□ "किसी भी साहित्यकार की कला का विवेचन कठिन काय है। बहुत सी सैद्धातिक समस्याए विवेचन आरम्भ होने से पहले अपना समाधान चाहती हैं। साहित्यकार भी स्थापत्यकार की तरह अपना निर्माण कौशल प्रदर्शित करता है। इस कौशल का हम कसे परखें ? निर्माण कौशल के लिए उसकी रचना सामग्री क्या है ? भाषा, शब्दा का अथ, उनकी ध्वनि, छन्द प्रवाह, मूर्ति विधान—इनका परस्पर सम्बन्ध क्या है, काव्य की सरचना से इनका सम्बन्ध क्या है ?—(इन प्रश्नो से उलझते हुए ही किसी भी रचनाकार की काव्य कला का विवेचन किया जा सकता है।)

□ डा रामविलास शर्मा

खण्डहर के बारे में

□ नीलकण्ठ

यह है बरोठ। इसके बाद ओसारी
फिर आगन और फिर पूरी इमारत
यहा से रोज भुनसारे न जाने क्या टूटता है
हाय याय होती है—जाने क्या टूटता है
हिम्मत बाध एक दिन
विस्मय के तिनके सब झाड दिए
टोह लेते हाथो को पसार दिया
खिडकिया दरवाजे टटोलता
आया बरोठ तक—फिर भीतर को पठ गया।
जकडे हुए हाथ
अपने ही हाडो की तात से
गदन पर अपनी ही जटाओ का बोझ रखे
सदियो गुजारी उस मेहनत के घनीभूत
खण्डहर मे झोक दिया—हवा न
हवा मुझे अक्सर ही ठेल ठेल जाती है

इस कमरानुमा पेटी म
जाने किस भाषा मे
जाने किस आशा में
कौन लिख गया—ये रहस्य व्यूह भेद मे ?
कौन है ? कौन है ?? कौन है ???

कैसी यह गूज है
कपती दीवारो पर
धप्प धप्प,ठप्प ठप्प—
कोलाहल फूट फूट पडता है।
आगे को हवा मुझे ठेल ठेल जाती
जहा और भी अधेरा है—
अनजाने मन्त्रो—का
आगन के आर पार

शोर आता शोर जाता
कही कही धुधले से दिखते
निशान अगूठो के नखो के
दीवार को ढहाने की कोशिशो के
काले धब्बे से खड खडे सुनते हैं
कान यहा पर्दो से हिलते
टूटने का सगीत—टूटा हुआ गीत
बाहर जोर की छपाक
कौन है ? चीखती आवाजो को थामे
यह कौन है ? कौन यह ??

ठहरो सुनो यह आवाज
पौधे की जडें जमीन मे धसी हैं
यही खीच लाती
खीच खीच लाती। यह आह ! यह कराह
यह जवान कारीगर की मौत है
जिसे लम्बे डग भरता यह अदृश्य ढोता है
गध भर आती है—आकार नही दिखता
यह कौन है ? हर मौत का हिसाब जा ढोता है
पावो मे जकडन सी
दर्रे ये पिछले भूकम्प के
धरती का कटा हुआ पेट

सब मडिया गायब हैं
नायक वह आसमान
ऊपर को उछालता है
किसके य धड कटे सर
सब मडिया गायब हैं—क्यो ?

गध भर आती है पसीने की
जीने की। नायक का दिखता नही चेहरा
यह इमारत नक्शे फडफडाती है
देखो यह स्याह सन्नाटा
यही कही दज है पुलिस गोली चाज का
न्यायिक जाच
यह मास के जलन की आच
हवा मुझे ठेल ठेल जाती है

बन्द दरवाज़ो पर चौखट पर
नदियो की राह चल माथे पर
भावर सी पडती । पिछले भूकम्प का कमाल
यह धमकती हुयी भट्ठी
गरम गरम लावा—
धरती के नीचे—जरूर कुछ होता है ।
उड़ते परिंदो के पख टकराते दीवारो से
यह आसमान कैद है
कही-कही दमकते-दहकते सदमों पर
जकड चकराते इन बच्चे से दिमागो का इन्द्रजाल
धरती की छाती पर अपनी मदन का बोझ
अपने ही हाडो का तात
बार बार ऊपर उछालता टूटता सगीत
हिम्मत के कट हुए हाथो को
ठाक ठाक जाता है—कौन ?
मालिक इस कुहरे का
यहा वहा रिसने सा लगता है बोध
पेंच कौन कसता
कौन यहा आता चिल्लाता—गला फाड फाड
कैसा यह प्रहसन
कैसा तमाशा यह
सब कुछ क्यों मुझे नही दिखता
आखो मे तिरते ह अण्डा के हस—
यह सरसराहट है रेत के खिसकन की
ढेर का ढेर बारूद यह
यह छाती से चिपका विध्वस
कौन हैं मालिक इस भावी शमशान का ??
क्या नहीं दिखता निर्माण
यहा हो रहा निश्चय ही—
हवा बार बार यहा मुझे ठेल जाती है—
बच्चे की जन्मपत्री । बारूद के ढेर पर
क्यो नही टिकते है पैर खण्डहर इमारत के
क्यों नही होता पटाक्षेप क्यो नही
यह आवाज अश्व शक्ति

कहाँ है इसका सूत्रधार
बारूद ठस्स-ठस्स । ये बादल ये कबूतर
यह नक्शा यह बटे की जन्म पत्री
जिंदा बारूद का गगन चुम्बी ढेर यह
कौन है ? आसमान का सहचर
जो रात को दिन से जोड़ देता है
यह जागरण
यह हिमता हुआ भू मण्डल
यह मुक्ति दूत—
दिए सा टिमटिमाता—
यह इमारत
यह शताब्दी
उधर—दूर—दिखते हैं
उठते हुए खम्भे—पाठशाला के ?

(जनयुग)

लो सुर्ख सवेरा आता है
आजादी का आजादी का
गुलनार तराना गाता है
आजादी का आजादी का
देखो परचम लहराता है
आजादी का आजादी का
ये जंग है जंगे आजादी
आजादी के परचम के तले

● मखदूम मोहिउद्दीन

अकाल

□ बरयाम नेगी

अकाल उपजेगा, मामा, अकाल
जिसे भी अपना समझ कर खेत बीजोगे
जिसकी मिट्टी की बुझाओगे तुम अपने खून और पसीने से प्यास
वही उपजेगा अकाल, मामा, वही उपजेगा अकाल
तुम्हारी गोदी में बैठा बच्चा तुम्हारी दाढ़ी पर हाथ फेरते फेरते
तुम कहोगे, अचानक, लुढ़क जायेगा एक दिन
जिसकी खुली छूटी आंखों को
बंद करने का साहस कर न पायेंगे तुम्हारे हाथ
तुम्हारी आंखों से बहते आंसुओं का धिक्कारना तुम्हें
सिर्फ तुम्हें सुनाई देगा, मामा, भयानक विस्फोट की तरह
वे सब सांत्वना देने आयेंगे तुम्हें एक से एक बढ़ कर
जो दो दिन के लिए एक जोड़ी बैल देने को राजी न थे
तुम्हारी अपनी तो जिन्दगी निकल गयी इसी सोच में
जमीन बेची जाये या एक जोड़ी बैल खरीदे जायें
दो हाथों और एक गैंती से
जितनी भी बीज पाती जमीन तुम
फसल पाने की उम्मीदों से लटकाये तो रखती है
पर हर बार तुम्हारे श्रम से
करती है तुम्हारा ही उपहास, मामा,
फसल के नाम पर तुम्हारे हाथों थमा कर सूखी घास
हर बार टलते रहे इस सच्चाई से
कि जिसे भी बीजोगे खेत समझकर
वही उपजेगा अकाल
जानते हुए भी तुम जिसे अपना समझते जाओगे खेत
वहीं उपजेगा अकाल
बहुत भोले हो, मामा, तुम
समझ नहीं पाते वक्त के अकाल जैसे इशारे भी तुम !

"अनयुग"

वे जो आगे निकल गये

□ प्रणय रजन

क्या तुम उन्हें जानते हो
 वे जो आग निकल गये
तुम जानते हो म
 कैसे उद्घाटित करता है शहर स्वय को
 कसे खुलता है जीवन पत दर पत
 कैसे छा जाते हैं रग सुबह के आकाश म
 कसे भर देती है सार वातास को खुशबू फूलों की
 कसे असली चेहरे नजर आते हैं नकाबपोशो के
 और कैस उतारते ही अपरी नकाब को वे डाल देते हैं
 शहर पर, जीवन पर, रगो पर, फूलो पर
क्या तुम उन्ह जानत हो
 व जो आगे निकल गये
वे जो पहली कतारो मे थे
वे जिनकी आखें चमकती थी
 लिय गय फैसला से
उन फसलो से तुम दख सकते हो
शहर, जीवन, रगा, फूलो को
 और नकाब को अलग,अलग

(प्रतिबद्ध कविता—१)

ऐ जुल्म के मारा लब खालो चुपके रहने वालो चुप कब तक
कुछ हश्र ता उनसे उट्ठेगा, कुछ दूर तो नाले आएगे

● फैज अहमद फैज

फ़सल का गीत

□ दिविक रमेश

फसल की फसल
खड़ी हो
गुप चुप गुम
—अक्सर
इसी से अन्दाजा लगाने वाले लोग
उसे कमजोर कहते हैं।
उन्हें
पौधे पौधे के बीच
बधा
रिश्ता
नजर नही आता।
उदास-उदास
अपने में डूबे
ये पौधे भी तो
भरी जवानी मे
मरियल से लटके लटके
रह रह चुप हो जाते हैं।
लेकिन
सच मानिए
ये तो इतने कमजोर नहीं
जितने दिखते हैं।
जरूरत
दरअसल हवा की होती है
एक सही हवा
जो इनके मन को आन्दोलित कर
इनकी ही भाषा के शब्दों में
इनके ही भावो से

इनको ही परिचित कर
दूर दूर तक
दूर-दूर तक
बहती है।
तब
अपनी जमीन में गड़े हुए मजबूत
ये पौधे
लिपट लिपट कर
झूम जाते हैं मस्ती में
लहरा उठता है शक्ति का सागर
तब इन्हें
कोई नहीं रोक सकता

(जनयुग)

हम वह राही हैं जो मंजिल की खबर रखते हैं
पांव कांटों पे, शगूफों पे नजर रखते हैं
जितने ख्वाबों से निचोड़ा है उजाला हमने
रात की कब्र पे बुनियादें सहर रखते हैं

[redacted] कफी आजमी

कविता के इर्द-गिर्द

□ अक्षय उपाध्याय

यह कविता नहीं है
कविता के इर्द गिर्द भटकता हुआ दर्द है
जिसकी शाखा पर
मौसम के इंतजार में एक गंधहीन फूल खिला करता है
मुमकिन है तुम इसे तोड़कर ले जाओ और
खिड़की के किनारे रखे गुलदस्ते में सजाने की
कोशिश करो जहां तुमने रखे थे
रजनीगंधा के फूल
तुम समझते क्यों नहीं
कविता के न बन पाने का दुख
कविता के बन जाने के सुख से कितना बड़ा होता है ।
एक आदमी हजारों वर्गमील फैले हुए
भूखंडों को लेकर
मर रहा होता है रोशनी की तरह पसर रहा होता है
यह कविता नहीं है
दांतों के बीच दबी सच्चाई है
शायद तुम इसे काट कर ले जाओ
और अपनी किताबों पर चस्पा कर दो
या फिर किसी भी मनचली को अपने प्यार की याद के बदले
भेंट कर दो
तुम नहीं समझ सकते
कि जमीन के बीच लोह की तरह सख्त
अनुभवों को कविता में बदलते वक्त
कितना पिघलता पड़ता है
एक पूरी की पूरी चेतना होती है जो आने वाली नई ताकतों
के साथ खून खून हो रही होती है
अपनी ही जमीन पर !!

'पुरुष'

सन्नाटा बोलता है

□ चारुमित्र

पेड़ों का हिलना तक बंद है
फूलों पर उदासी भटकी है
और पत्तियां चुपचाप झर रही हैं !
यह कैसा मौसम है कि लोग
लगभग चीखना चाहते हैं
और वे हैं कि सन्नाटा बुन रहे हैं। लगातार
शब्द को कुचलकर
वार्षिक जयन्तियां मना रहे हैं
खामोशी की खुशी में !
उन्हें नापसंद है

मां की लोरी
बच्चों की किलकारी
मजदूरों का गान—
शब्दों का अभियान !

हमारा यहां होना
या इस तरह चलना भी
उन्हें बेहद नागवार लगता है
—कि हम रात को रात क्यों कहते हैं ?
—कि हमारे घरों में धूप और हवा क्यों आती है।
पूरब से ??
—कि हम क्यों चलते हैं। सड़क की बायीं तरफ ???
—कि हम क्यों करते हैं सूरज के स्वागत की तैयारियां ????
अंधेरी रात सिर्फ उल्लुओं के लिए होती है
और वे नहीं चाहते कि यह रात खत्म हो !
इतिहास गवाह है कि
जब भी ऐसी रात आती है—
खामोश और खौफनाक—

उस्ताद उल्लुओं की बन आती है
नींद डूब घासलें भी उजाड़ दिए जाते हैं
और निर्दोष पक्षियों और उनके बच्चों की
असहाय चीख के बीच
वहशी अश्वत्थामा
आक्रमण करता है चुपचाप
पाण्डवों के शिविरों पर !
उठो ! मेरे दोस्त,
अब कोई भी रात आराम के लिए नहीं बची
आओ ! अब हम निकल चलें—
मैदानों, जंगलों और खेतों की ओर
कह दो सन्नाटा बुनने वालों से
कि वे शब्द को न कुचलें,
कुचले हुए शब्द में बेहद ताकत से होती है—
वह अपनी टंकार दुगनी ताकत से फैलाता है
भूगर्भ के अंधेरे में भी !
कह दो उनसे कि
सन्नाटा चुप नहीं रहता
सन्नाटा बोलता है
सन्नाटा सुनता है
सन्नाटा सच को खोज निकालता है !

(प्रतिबद्ध कविता २)

वोल्गा से गंगा तक

□ गोविन्द श्रीवास्तव

मैं कहना चाहता हूं
एक कोमल, नाजुक सा शब्द
'चिड़िया'
और वह ऊंचे आसमान पर
घूमता हुआ
चील बन जाता है
कितनी सनसनीखेज है
शब्द की यह भयावह यात्रा !!

× × ×

बायें हाथ में पक्षाघात का जोरदार दर्द
सिर पर भयानक बोझ,
भारीपन ऊपर हजारों मील लम्बा और
चौड़ा हिमाच्छादित पठार।
और इधर
चाय के हरे भरे बागानों में
गश्त लगाते हैं जोंक
चूसते है लहू ।
भारी भरकम ट्रक लादे जा रहे हैं
चाय, जूट के भण्डार
बच्चों का सिर कुचलते हुए गुजरते हैं
मेरे देखते-देखते
कोलतार की सड़क सुर्ख हो उठती है

× × ×

पश्चिमी हवाओं के साथ
उड़ती आती है दियासलाई गाड़ियों की
आणविक धूल

गिरती है मुडेरों पर
        आगन म
सेहन म
दालान मे
खेत मे
खलिहान मे   आहिस्ता   आहिस्ता
कराहते हैं कैसर के रोगी,
अपग, अपाहिज
पूरा देश बन जाता है   'वार्ड न० सिक्स'
फलती फूलती हैं
हरी होती हैं
बीमारिया की नयी नयी फसलें
माहमारियो की नयी-नयी किस्मे
सूखा, बाढ, अकाल, दरिद्रता,
काला जार
भव्य महलो और ऐतिहासिक प्रासादों के
मेहराबो मे टगे हुए हैं
हरिजनो के कटे हुए सिर
मानसूनी जलधाराओ मे मिलते हैं
बड बड मगरमच्छ
शार्कों का पेट फूलता जाता है
फूलता जाता है
ला खाकर अमरीकी सहाय।
पूछता हूँ सभी से
पूरब से पश्चिम—उत्तर से दक्षिण
कितने शिशुओ की हत्याए हो चुकी हैं
और कितने दुधमुहे
अभी भी रो सकते हैं।
× × ×
लौटता हू बिल्कुल अकेला
उनके पास
जिनकी जिह्वाए कट चुकी हैं
नाकों से गिजा दी जा रही है
या फिर

पंख कट चुके हैं लोगों के सतखंडा पर।
असंख्य आंखें लेकिन
देखती हैं दूर
समुद्र में एक प्रकाशस्तंभ
और पामीर की चोटियों के पार
एक छिपता सितारा।

× × ×

आती है खबर
साइबेरिया से आ गए हैं
एक लाख सारस
हजारों राजहंस
अनगिनत चक्रवाक
वोल्गा से गंगा तक
यंगसी से कोसी कछार तक
छा गए हैं चिर प्रतीक्षित
आगन्तुक !!

(जनयुग)

ये हर एक की ठोकरें खाने वाले
ये फ़ाक़ों से उकता के मर जाने वाले,

ये मज़लूम मख़लूक़ गर सर उठायें
तो इंसान सब सरकशी भूल जाए
ये चाहें तो दुनिया को अपना बना लें
ये आक़ाओं की हड्डियां तक चबा लें

● फ़ैज़ अहमद फ़ैज़

जाड़े की रात

राजेश जोशी

रात के दूसरे पहर मे जब लोग
गर्म बिस्तरो और बंद कमरो मे   सो रहे
होते हैं   या
धीमी आवाज़ पर बजते रेडियो पर   लोरियों
की अंतिम सभा सुनते हुए   बोझिल
हो रही होती हैं   उनकी पलकें
सेह की तरह बार-बार अपने
सुई से नुकीले बालो को   हमले के लिए
फुलाते हुए   सडको पर झपट्टे मारता
दौडता है   एक खौफनाक भाला
जाडा   और फुट पाथ पर
एक छोटी सी दुलाई मे दुबके बच्चो की
बार बार बाहर निकल आती पगथलिया
किसी भयभीत खरगोश सी
वापस रजाई मे सिमट जाती हैं   सुबह
की प्रतीक्षा करता बूढ़ा   रात
भर जागता है   जबडो को भींचता
हुआ   रह रह कर झुर्रीदार अंगुलियो को
मुट्ठी मे कसता हुआ,   किनारे पर
सोयी औरत की किट किटी
फिर फिर बजती है   और
बुझी हुई आग के पास बैठा   सूगला
सा बच्चा कनीदार पतंग की तरह
    थरथराता है   और किचकिचाकर
खगालता है   अलाव की राख
चिंगारियों की तलाश
            जारी रहती है यू ही

"क्यो"

जंगली मुर्गे से

□ प्रभाती नौटियाल

झाडियो से लौटते
रास्ते पर
भारी बूटो की टाप
बहुत साफ है
जगल मे खड लम्बे पेडों के
बचे ठूस
छिलको की गम राख मे
जिन्दा हैं
जगल
जानवरो का अपना कब रहा
वे बफ से बचते हुए
बस्ती में फसते है
और बफ पर जमे खून के कतरे
सिफ धूप निकलने तक

सच है
दाल के पतीले ने
आदमी ब्रह्माड मे फेंका

लेकिन
यह भी सच है
इस कक्षा से बाहर
इस बात की कोई गारटी नही
कि मृत्यु अपने गाडी के पहिये
नही बदल रही है
बादल अगर छट भी रहे है
तो पश्चिम का ज्वार कहां घटा है
देखो—
मछुआ सिफ मछली फसा रहा है

या फिर रोटी
मोती नही है
फसाने की चीज
इतिहास
उस जगल से कभी नही गुजरा
और तुम गाली पढकर
जगली फूलो को याद करते हो
—अपने फेफडो मे
बारूद की गध को
खुशबू समझते हो !
वह नीली झील का पानी पीकर
लौट रहा है
एक घनी लम्बी शाखाओ वाले
पेड के नीचे
और जाहेगा अगले जगल की
बेशुमार खुमारी का हिसाब
हमेशा की तरह
लौटता है वह फिर
बतौर शौकीन शिकारी
जगली मुर्गे को टाग से पकडे
शाम होने तक
झाडियो से लौटते
रास्ते पर
भारी बूटो की टाप
बहुत साफ है !

''आलोचना'

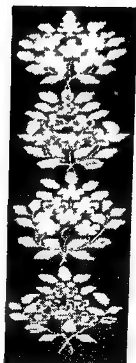
निर्णायक वक्त

☐ सुरेश शर्मा

निरंतर शोर करती
चीखती और
बेतरतीब तेज भागती
इस दुनिया मे
कितना मुश्किल है
किसी का तटस्थ
और निर्लिप्त बने रहना
आ गया है
जहा तक यह कारवा
चकाचौध खबरो
खूसट हिदायतो
और ओढ लिबादो
के दम पर
बढ नही सकेगा
आगे।

चुनना होगा
तनाव, आतक और मोर्चे
म स कोई
एक चीज
कविता भी
की जा सकती थी
इस स्थिति पर
कितना लाचार है
भाषा
जो दद सहलाने
या कुरेदने म से
कुछ भी नही
कर सकता।
पूरे के पूरे
नकाबधारी चेहरो के
इस जुलूस मे
कुछ भी न कर बैठना
कितना खतरनाक हो गया है
पूरे हुजूम के लिए—
पूरे हुजूम के लिए
कितना भयानक
आ गयी है
रात
'सूरज' के विरुद्ध
शिविरो मे
मत्रणायें चल रही है
और खामोश
सतरी
एक दूसरे के चेहरे
ताक रहे हैं।
एक बीभत्सता के लिए
ऐसा क्या होता है
क्या होता है ऐसा
कि बहुत कुछ
पा जाने के बाद
लोग भेडिये हो जाते हैं।
बहुत नही सोचा जा सकता
इस सच पर
बहुत नही
यह एक आमद
चुनौती भरा और
निर्णायक वक्त है।

.....और अंत मे———



कविताए

- ☐ केवल गोस्वामी
- ☐ राजकुमार सैनी
- ☐ श्याम कश्यप

निबन्ध

- ☐ डा० कमला प्रसाद



"नहीं होती, कहीं भी खतम कविता नहीं होती
कि वह आवेग त्वरित काल यात्री है।
व मैं उसका नहीं कर्ता
पिता धाता
कि वह कभी दुहिता नहीं होती,
परम स्वाधीन है वह विश्व शास्त्री है।
गहन गम्भीर छाया आगमिष्यत् की
लिए, वह जन चरित्री है।"

□ मुक्तिबोध



"बशर्ते तय करो,
किस ओर हो तुम, अब
सुनहले ऊर्ध्व आसन के
दबाते पक्ष में, अथवा
कहीं उससे लुटी टूटी
अधरी निम्न-कक्षा म तुम्हारा मन,
कहा हो तुम ?"

□ मुक्तिबोध

पटाक्षेप

□ केवल गोस्वामी

हमारा रिश्ता
कच्चे धागों से नहीं बंधा था
न ही उखड़ी सांसों के
सम्मिलित संगीत के साथी थे हम
हमें बांध रही थी हमारी भूख
और श्रम से ऐंठी हुई मांस पेशियां
वह धुन
जो दूर तक खिंची
ठण्डे लोहे की छड़ों को गर्माता है
दरअसल देश का भाग्य निर्माता है।
यह साबित हो चुका है दोस्त
कि यह लोह—पाश
हमारे निपुण रक्त का
ठोस सबूत है
कि इन से रगड़ खाते हुए
दहलाती पहियों की आवाज
हमारी प्रतिद्वन्द्वी नहीं है
कि इंजनों से निकली लपटें
                    और धुए के गुब्बार
नहीं चटखाते हमारे सीने की हड्डियां
किन्तु ! बिना बादलों और पानी के
भाप और ताप के
कब तक आखिर कब तक
किसी नामालूम स्टेशन की
                    नामालूम सुर्खी कहानी में

बेकार पुर्जे की तरह
फेंके जाते रहेंगे—भूखे बीमार जिस्म
और टूटी चूड़ियों के साथ
सिसकियों की आवाज
इंजन की शंटिंग समझ ली जाती रहेगी।
ऐड़िया रगड़ने
और भूख को नियति समझने का भ्रम
टूट चुका है दोस्त
श्रम और भूख
शोषण और शक्ति का समीकरण
अपनी सीमाओं से लिपट रहा है
जहां से हर भूखा इन्सान
अपने कमजोर पांवों के साथ
पाकर और कमजोर पांव
एक आंधी का वेग महसूसता है अपने भीतर।
कब तक हमारी रोटियों का हिसाब
बंद रहेगा
वातानुकूलित भवनों में पड़ी फाइलों मे
हमारे लिए
रेल की ठण्डी पटरी
और जेल की सलाखों में
कोई अन्तर नहीं
चूंकि प्रजातन्त्र और प्रचारतन्त्र
समानार्थक हैं उनके लिए
जिन्होंने सरकारी भोज की थालियों में
पड़े व्यंजनों में
हमारी रक्त गंध कभी नहीं सूंघी
घुंघरुओं की झंकार में कभी नहीं सुना
हमारे दर्द का भावानुवाद
हो सकता है
कि हमारे जेल से लौटने तक
दाग दी जाए हमारे बच्चों की जबानें
उनकी माताओं के सामने
लटका दिया जाए एक गूंगा भविष्य

और गद्दारी का पट्टा
हमारी गर्दनों में डालकर
छोड़ दिया जाए हम संसद के आस-पास
चूंकि हम गवाह हैं
उन तहखानों के
जहां हमारे हिस्से का अनाज छिपा है
जब तक
उन तहखानों के दरवाजे
खुलते रहेंगे
काली मंडियों में
और हमारे बौने वेतन
नहीं छू पाएंगे
आसमान पर लटकी मूल्य सूचियां
हमारा देश गरीब रहेगा।
हम कटिबद्ध हैं
झूठ की इस गीता के हर अध्याय का
सत्य में रूपांतर करने के लिए
मक्कार सूत्रधार को
नेपथ्य से मंच पर लाने का पुण्य कार्य
जिसने जीने की हर सम्भावना पर
बैठा दिया है मौत का पैरोकार
और मेहनत का पारितोषिक दिया है
मात्र धिक्कार
इस नचीले नाटक से
ऊब गए हैं हम सब
पटाक्षेप की प्रतीक्षा किए बिना
करेंगे अपनी अपनी नयी भूमिका का
पूर्वाभ्यास
नए भविष्य के लिए।

(अनपुण)

"साथ-साथ"

□ राजकुमार सैनी

अन्तर्भू गुफा मे
या जुलूस के आगे-आगे
जनपथ पर जय जयकार करते हुए
या राजपथ पर हाहाकार मे,
गहरे जगलो, नदी-नालो—
को पार करते हुए,
खेतो, खलिहानों मे रात रात ठिठुरते हुए,
दफ्तरो, फक्ट्रियो खदानों, कारखानो की
चक्कियो मे पिसते हुए
तुम जहा कही भी हो
तुम्हारे साथ साथ हू।
उठाया जिस ध्वजा को तुमने
मेरी बाहो, स्कन्धो घुटनो,
मेरे वक्ष, हृदय और मस्तिष्क
की शिराओ में बहते हुए रक्त से
इसका रग मिलता है!
रगते ही रहेगे अपने रक्त से
फीका नही होने देंगे
इसका रग।
गिरने नही देंगे इस ध्वजा को जमीन पर
इसके गिरते ही
गिरेगा हमारा रक्त भी
उठाने के लिए ऊपर
और ऊपर !

फहरायेंगे एक दिन

जरूर फहरायेंगे
गोल गोल गुम्बद के ऊपर,
आयताकार किले की प्राचीर पर
श्यामल, सफेद पहाड़ियों के शिखरों पर,
घाटियों, दर्रों के बीचोंबीच
अशान्त और प्रशान्त समुद्रों के किनारों पर।
जन जन के हृदय पर
दुश्मनों की खोपड़ियों पर।
साथियो !
अपनी डफली लिए—
चलता हूं तुम्हारे पीछे पीछे
'कविमनीषी परिभू स्वयम्भू' होने का नहीं कोई भी दम्भ,
अहंकार या भ्रम।
जानता हूं
पहले उदित होता आदित्य
धूप-छाया में उसी की
उगते हैं बाद में
जीवन के अनगणित सत्य
और तब खिलते हैं
ज्ञान—विज्ञान—साहित्य।
कच्ची पगडंडियों या पक्की सड़कों पर,
बन्दीगृह में या उसके बाहर!
पत्थरों से लैस या
पत्थरों से घायल!
भायलर की आंच में तपते हुए या
पसीने में भीगते हुए
रंगे हाथों या लहूलुहान
तुम जहां कहीं भी हो
तुम्हारे साथ-साथ हूं।

(जनयुग)

एक कविता : शैली के लिए

□ श्याम कश्यप

□

तुम्हारी उम्र के साथ हरी हो रही हैं
मेरी संवेदनाएं फिर जी रही हैं
अनोखे स्पन्दन आगे बढ़ते, ढलते, अनगिनत आकार
हवा मुझे छूकर फिर हो रही है, कोई रंग, कोई गंध, कोई नाद
मैं इसे क्या नाम दूं—

मेरी बच्ची !
मैं इसे क्या नाम दू ?
भाषा भाषा ?
मिहनत की सगी
आदिम समुदायों से चली है जो
मैं एक अशक्त कवि इसे क्या नाम दू !

मेरी नन्ही
तुम्हारे साथ फिर सीख रहा हू दोबारा
तुतलाहट शब्दों को गढ़ने की कला
अब दर अब पकड़ रहा हू आकृतियों की छाया
प्रागैतिहासिक कन्दराओं के चित्र, लिपियां, ध्वनियां
और अनगढ़ हाथों से उपजी विजयी सम्पदा

मेरी बिटिया
तुम्हारी खोजी आंखों से फिर ढूढ रहा हू
ऐतिहासिक यात्राओं के तिरते मस्तूल

शैली—कवि की बेटी का नाम

जग-लगे खजर और जमीन मे गडे हुए नगर
अनोखी सभ्यताए हाथी दात के पहाड
जगल की भूरी पगडडिया
और काफिलो से कुचली हुई पत्तियो की आग

मेरी जडें धस रही हैं और भी गहरे
नीचे जहां खनिज कोलाहल द्रव
प्रवाहित हैं अनवरत विद्युत तरगें
सामाजिक सबधो की सतरें, घनीभूत परतें !

तुम्हारे
नौ महीने के अधेरे और जिन्दगी के उजालो
के बीच हल्की झीनी-सी
मासल झिल्ली टूटने की—मर्मान्तक चौंध
मेरी खुशबू ! मैं झेल नही पाया था
अपनी समूची उदारता, उत्सुकता और स्वागत के साथ—

तुम, जो अपने अस्तित्व की पूरी ताकत के साथ
हमारे बीच उगी हो, नवजात, तुम्हे मैं क्या उपहार दू ?

जलते जगल मे घोसला तलाशती
गौरैया की चुनमुन। तुम्हारी आवाज
जैसे भरी बरसात मे नदी का उबाल
यमुना की उत्तग उछाल—

जस किसी प्राचीन कबीले मे ढोल की थाप्
अलाव के इद गिद थिरकते आदिम सगीत की मादक धुन
जैसे बर्फ के आग मे पिघलने का स्वर
जसे कश्ती पर माझी का गीत
जसे जसे जैसे गाव की पाठशाला की घटी !

सख्त काली धरती की नमी पर
तुमने जब डगमगाता पहला कदम
होले से रखा था मेरी बुलबुल
तब हमारी दो जोडी आहत आखो मे

तिर आये थे, असंख्य सपने, बहारें, आह
और असीम सागर का निस्सीम गहरा नीलापन

साल दर-साल उम्र की डोर पर
बदलती दुनिया
और दुनिया को बदलने की तदबीरों के साथ
जमाने की मायान्तिक आपदाओं के बीच
तुम्हें क्या दूं, मेरी बच्ची—

तुम्हारी वर्षगांठ पर
आखिर तुम्हें और क्या दूं ? मेरी मुस्तकबिल !
नापे गये कदम दर कदम
सामूहिक अनुभव, लडी गयी दूरियां, निर्मम सच्चाइयां

अपनी मिट्टी से मिले तमाम इन्सानी जज्बात
और सूरज की किरणों से होड लेती असंख्य आंखों की दीप्ति !!

●

['और" तथ "उत्तरगाती"]

बोल अरी ओ धरती बोल !
राज सिंहासन डांवाडोल
बादल बिजली रैन अंधियारी, दुख की मारी परजा सारी
बच्चे-बूढ़े सब दुखिया हैं, दुखिया नर हैं दुखिया नारी
बस्ती-बस्ती लूट मची है
सब बनिये हैं सब व्योपारी
कब तक जनता की बेचैनी, कब तक [illegible] की धजारी
कब तक सरमाए के धंधे, कब [illegible]
बोल अरी ओ
राज सिंहासन [illegible]

हिन्दी की प्रगतिशील कविता : एक पुनर्विचार

—डा० कमला प्रसाद

लेखकों के सम्मेलन में बोलते हुए एक बार प्रेमचन्द ने कहा था कि "साहित्यकार या कलाकार स्वभावत प्रगतिशील होता है। और उसका स्वभाव यह न होता, तो शायद वह साहित्यकार न होता। उसे अन्दर भी एक कमी महसूस होती रहती है और बाहर भी। इसी कमी को पूरा करने के लिए उसकी आत्मा बेचैन होती है। अपनी कल्पना मे वह व्यक्ति और समाज को सुख और स्वच्छन्दता की जिस अवस्था मे देखना चाहता है, वह उसे दिखाई नहीं देती। इसीलिए वतमान मानसिक और सामाजिक अवस्थाओ से उसका दिल कुढता रहता है। वह इन अप्रिय अवस्थाओ का अन्त कर देना चाहता है जिससे दुनिया में जीने और मरने के लिए उससे अधिक अच्छा स्थान हो जाय। इस पर शायद इस विशेषता पर जोर देन की जरूरत इसलिए पडी कि प्रगति या उन्नति से प्रत्येक लेखक या ग्रथकार एक ही अथ ग्रहण नही करता।" ['हस" मे प्रकाशित १९३६ के प्रगतिशील लेखक सघ के वक्तव्य का अश।]

विचारणीय यह है कि वह कमी कौन सी है, जिसका द्वन्द्व रचनाकार को झकझोरता है। जाहिर है कि इस कमी का सबध बाहरी सामाजिक व्यवस्था से है। रचनाकार चाहता है कि जिस व्यवस्था मे मनुष्य जीता और रहता हो उसमे भाईचारा हो, उसमे विकास की सभावनायें मौजूद हों, स्वार्थ, ईर्ष्या, द्वेष की प्रतियोगितायें न हो, लगातार बेहतर भविष्य के लिए उसकी शक्ति का उपयोग हो, यथास्थितिया, प्रगतिशीलता को बाधित न कर पावें और कुल मिलाकर वह शोषणविहीन हो। जब उसके मन का समाज नही होता, तभी वह उस व्यवस्था का विरोध करता है। विरोध के पीछे "यथास्मै रोचते विश्वम" अर्थात उसकी रुचि का ससार कल्पना मे निहित रहता है। ठीक है कि उसके हाथ में राजनीतिक सत्ता नही होती, जिससे वह उस व्यवस्था का अन्त कर सके, परन्तु यह भी तय है कि उसकी रचना परिवतन के लिए जन

मत तैयार करती है। जनता के बीच वह यथास्थिति और गतिशीलता में फर्क करती है। व्यवस्था विरोधी सगठन और निर्माण मे रचनाकार की सतत चेष्टा कालजयी प्रभाव छोड़ती है। इस प्रसग मे जब हम अपने देश की ओर नजर दौड़ाते है, तो व्यवस्था विरोधी रचनाकारो की शानदार परम्परा यहा भी दिखाई पड़ती है। बाल्मीकि, कालिदास, सरहपा, कबीर, अनेक सिद्ध सत, तुलसी जैसे कितने नाम हैं जिन्हे समाज का शोषक ढाचा पसद नही था।

मतलब यह कि रचनाकार को यदि व्यवस्था के पक्ष मे खरीद नहीं लिया गया तो स्वभाव से उसमें गतिशील ससार का स्वप्न होता है। यही गतिशील ससार प्रगतिशील रचना की सारवस्तु है। इसी सारवस्तु को निरतर माज माज कर अब नियमित, विश्वसनीय और अनिवार्य बना लिया गया है। दुनिया में आज प्रगतिशीलता यदि अनिवार्य हो गई है तो उसमे कालजयी रचनाकारो का स्वप्न ही मूर्त हुआ है। लम्बे सघर्ष के परिणाम स्वरूप राजनीतिक शक्ति को अपने पक्ष मे कर लेने के कारण उनके स्वप्न धरती मे उतर आये हैं। बीसवीं शताब्दी उनके लिए महत्वपूर्ण इसीलिए हो गई है कि इसी मे उन्हें खोया हुआ सामाजिक विश्वास मिला है, खोई हुई अभिव्यक्ति रचनाकार को मिली है और खोया हुआ ढाचा समाज को।

वर्तमान मे प्रगतिशील लेखन मार्क्सवादी चिंतन का रचनात्मक रूपाकार है। इसका अर्थ यह नही कि इस विचारधारा के पूर्व का लेखन प्रगतिशील नहीं रहा। हिन्दी के पिछले इतिहास की प्रगतिशीलता के विवादास्पद पहलुओ को फिलहाल स्थगित कर दें तो भी आधुनिक भारतेन्दु युग से हमें व्यवस्था विरोधी लहर क्रमबद्ध रूप से मिलती रही है। रीतिकालीन सामन्तवादी मूल्यो को समाप्त करने का पहली बार व्रत इसी युग मे लिया गया। भारतेन्दु के नेतृत्व मे इस समय नाट्य मण्डलिया जन मानस का रूपान्तरण कर रही थीं। लेखक सामाजिक विषयो पर कहानियां, विचारपूर्ण निबध लिखते थे और कवि जातीय चेतना को सहेजने के काम मे सलग्न थ। 'कवि वचन सुधा' मे भारतेन्दु की एक विज्ञप्ति प्रकाशित हुई थी कि "भारत वर्ष की उन्नति के जो अनेक उपाय महात्मागण आज कल सोच रहे हैं उनमें एक और उपाय भी होने की आवश्यकता है। इस विषय के बड़े-बड़े लेख और वार्ताएं प्रकाशित होती हैं किन्तु वे जनसाधारण मे दृष्टिगोचर नहीं होती। इसके हेतु मने सोचा है कि जातीय सगीत की छोटी-छोटी पुस्तकें बनें और वे सारे देश में गाव गांव म साधारण लोगों मे प्रचारित की जायें। इस विषय में जिनको कुछ भी रचना शक्ति है उनसे सहायता चाहता हू कि वे लोग भी इस विषय पर गीत व छद बनाकर स्वतत्र प्रकाशित करें या मेरे पास भेज दें, म उनको प्रकाशित करूगा और सब

लोग अपनी-अपनी मण्डली में गाने वालों को यह पुस्तक दे दें।" ("कवि वचन सुधा"—मई १८६६ अंक में प्रकाशित विज्ञप्ति का अंश), विज्ञप्ति का प्रभाव पड़ा कि सावनी, कजली, बिरहा, रेखता, मल्हार, ठुमरी, तथा गजलों में जातीय चेतना का चयन होने लगा। भारतेन्दु युग का काव्य आन्दोलन एक प्रकार से जनता को शिक्षित करने के लिए था। उनकी शिक्षा के आधार जनवादी थे। वे यथार्थ की दुनिया को जनमानस में विकल्प के रूप में प्रस्तुत कर रहे थे।

महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने समझा कि 'विलायती माल के बायकाट से देश में औद्योगीकरण होगा'—इसलिए उसी सूत्र को आंदोलन का प्रेरक चुना। वे मजदूर संगठनों के पक्षधर थे, सामाजिक रचना के संदर्भ में वे विकासवाद पर आस्था रखते थे, रूस की क्रांति को उन्होंने जनता की शक्ति का नया सूर्य कहा था। वे सामाजिक ढांचे में आमूल परिवर्तन चाहते थे। वे चाहते थे कि रचनाकार स्वयं विचारों और भावों की अभिव्यक्ति कर आत्मा और आस्था का लेखकीय कर्म करे। वे जो विरासत कायम करना चाहते थे उसको प्रेमचन्द और निराला ने पहचाना था। रामचन्द्र शुक्ल ने सतत उसे विस्तार दिया। द्विवेदी युगीन कवियों में प्रमुख थे मैथिली शरण गुप्त। गुप्त जी ने देशप्रेम जातीय एकता, साम्राज्यवाद विरोध की काफी कविताएं लिखीं। वे उस समय एक तरह से जनकवि ही गये थे। उन्होंने बंगला की व्यवस्था विरोधी कविताओं का अनुवाद कर अपनी आस्था को प्रकट किया। गया प्रसाद शुक्ल 'त्रिशूल', तो उस समय तक साम्यवादी प्रभाव की रचनाएं लिखने लगे थे। वागीश्वर मिश्र कविताएं लिखते थे, जिनमें हिन्दी उर्दू की एकता के प्रयोग थे। द्विवेदी जी ने खुद जन शिक्षा की दृष्टि से "आल्हा" बैसवाड़ी बोली में लिखा, जिसमें विषय की ताजगी है। उनकी युग शिक्षा के केन्द्रीय विषय थे—देश प्रेम, जनभाषा, किसान मजदूरों अछूतों के संगठन, अकाल के कारणों का बोध आदि।

वास्तव में प्रगतिशील साहित्य का मूल सन्दर्भ यदि मानवता के प्रति प्यार और आस्था है, अंध एवं धर्म के रूढ़ ढांचे का विरोध है, सामान्य जन की पक्षधरता है और उसके लिये संघर्ष का आह्वान जरूरी है तो छायावादी काव्य भाव बोध के स्तर पर अधिक और विचारधारा के स्तर पर कम प्रगतिशील है। उसी युग में वे रचनायें भी हैं, जो वैचारिक गतिशीलता को द्विवेदी युग से आगे बढ़ाती हैं जैसे युगान्त, युगवाणी, ग्राम्या, कुकुरमुत्ता, अणिमा, बेला, नये पत्ते, रानीमानी, खजोहरा, मास्को डायलाग्स, गर्म पकौड़ी, आदि। आरम्भिक छायावादी काव्य में सामन्ती संस्कारों के बजाय पूंजीवादी संस्कार अधिक मिलते हैं, लेकिन वे संस्कार नयी कविता जैसे विकृत न होकर उस श्रेणी के हैं जिनमें

करने की आकांक्षा है। सन् १९४७ मे प्रतीक, के प्रकाशन से शुरू होने वाली नयी कविता प्रयागवादी कविता है जो समाजपरकता और प्रगतिशीलता का विरोध करती है जो कुण्ठा और घुटन के संघर्ष को आवश्यक न मानकर उन्हें जीवन मूल्यो के रूप में स्वीकार करती है। सन् १९५४ मे नयी कविता के प्रकाशन से शुरू होने वाली नयी कविता अस्तित्ववादी कविता है जोकि छाया वादी शिशु आस्था के विरुद्ध व्यक्तिनिष्ठ विवेक पर बल देती है, जो मानव को लघुमानव बनाकर उसकी विवशता और पराजय के भोगने को कवि की परम उपलब्धि मानती है। सन् १९५८ में कृति के प्रकाशन से शुरू होने वाली नयी कविता क्रमश उस पराजित पीढ़ी की कविता बनती जाती है जो व्यक्तिनिष्ठ मूल्यो के बदले मूल्यहीनता का झण्डा लेकर आगे बढती है। भूखी पीढ़ी, नगी पीढ़ी, अकविता, ताजी कविता की अनेक संक्षिप्त अर्धविक्षिप्त पीढ़ियाँ इसी मूल्य-हीनता के झण्डे के नीचे एक दूसरे को ललकारती है। इस ललकारने की क्रिया के बावजूद इन सब मे आतरिक सगति है क्यो कि वे सभी साहित्य और राज नीति के प्रगतिशील तत्वो को अस्वीकार करती हैं—नयी कविता का आरम्भ न तार सप्तक से हुआ, न तारसप्तक तक वह सीमित रही" (आलोचना ४४ पृ ७५ लेख नन्दकिशोर नवल)।

जाहिर है कि प्रेमचन्द, यशपाल, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, रागेय राघव और रामविलास शर्मा—कहानी, उपन्यासकार और कविताओ के जरिये जिस यथार्थवादी रुझान को केन्द्र म रखकर रचना कर रहे थे, उसकी खोज दूसरे तीसरे दशक से ही की जाने लगी थी। चौथे दशक में तो वे शक्ति शाली रचनाप्रवृत्ति का रूप ले चुकी थी। प्रगतिशील कविता का आन्दोलन विकास की दृष्टि से तीन चरणो में विभक्त है। पहला चरण आजादी पूर्व काव्य उभार का है। इस उभार मे कई तरह के कवि सक्रिय थे। जैसे छायावादो त्तर रोमानी कवि, प्रगतिशील, राष्ट्रीय काव्यधारा के कवि आदि। कवियो मे निराला, पन्त (छायावादी), बच्चन, नरेंद्र शर्मा, अचल, आरसी प्रसाद, भगवती चरण (रोमानी) नागार्जुन केदार त्रिलोचन, रागेय राघव, शील रामविलास शर्मा, सुदर्शन चक्र, शिवमगल सिंह 'सुमन' (प्रगतिशील) नवीन, दिनकर, (राष्ट्रीय काव्यधारा) की रचनायें इस दौर मे साम्यवादी प्रभाव मे हैं। इन कवियो का रचनाजगत बहुत सुलझा हुआ नही था। वे क्राति को समझे बिना अतिरिक्त उत्साह मे रूसी क्रांति के गीत लिखते थे, साम्यवाद का स्वागत करते थे, मानवता को परिभाषित किये बगैर दुलारते थे, उन्माद मे आकर रक्तपर्व मनाते थे। लाल निशान की प्रशसा करते थे, क्रातिकारी पार्टी मे शामिल हुये बिना क्रांति की अराजक बातें करते थे, गावो के नाम पर या तो वहां के निवासियों के भोलेपन मे झूमते थे या उनकी दीनता पर दूर से आसू

पूंजीवाद की गतिशील मानवीय भूमिका थी और वह सामन्तवाद का विरोधी था। यहां तक कि महादेवी के काव्य में गहरे स्तर पर नारी को जड सामन्ती जातिगत व्यवस्था से मुक्त करने की पीडा है। छायावादी कवियों में निराला का व्यक्तित्व सर्वाधिक विद्रोही जनतांत्रिक तथा गतिशील रहा है। वे भारतीय किसान का तेजस्वी वर्गबोध लेकर उभरे थे। उन्होंने चेतना के अहं और विलय दोनो प्रकार की कवितायें लिखी। उनकी दृष्टि में आरम्भ से ही क्रांति की आकांक्षा थी जो कि 'बादलराग' जैसी रचनाओं में प्रकट हुई है। छायावादी युग में राजनीतिक धुरी गांधी के हाथ थी, जिसमें मूल्यों की दृष्टि से राष्ट्रप्रेम, जनतन्त्र की भावना, साम्राज्यवाद विरोध के साथ साथ समझौतावादी आत्म परक दलीलें भी थीं, ठीक उसी प्रकार छायावादी काव्य में इन सभी भावनाओं का मिश्रण है।

चौथे पांचवें दशक—प्रगतिवादी कविता, रूमानी तथा नयी कविता के आरम्भिक रूप के मिले जुले चरित्र से भरे हुये हैं। इस समय भारतीय राजनीति में अक्तूबर क्रांति का प्रभाव फैलने लगा था। संघर्ष और चिंतन में यथार्थ के प्रति गहरी ललक और मांग में गुणात्मक असर आ जाने से मार्क्सवादी विचारधारा वास्तविक यथार्थ तक ले जाने लगी थी। गांव-गांव में किसानों के संगठन, ट्रेड यूनियनों की एकजुटता, मध्यवर्ग की बेचैनी, राष्ट्रीय आजादी के संघर्ष में वामपंथी नेताओं का प्रभाव आदि कारणों से साम्राज्यवादी अंग्रेजी सत्ता डगमगाने लगी थी। वामपंथ के प्रति जो नया उत्साह था, उसी की पृष्ठ भूमि में मुल्कराज आनन्द, हीरेन मुखर्जी, सज्जाद जहीर, (बन्नेभाई) आदि की प्रेरणा से "अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ" का गठन हुआ। प्रेमचन्द की अध्यक्षता में संगठन का पहला अधिवेशन १९३६ में हुआ। मजदूर-संगठनो की भांति जिले एवं तहसीलों में इसकी शाखायें फलीं। रचनाकारों ने यहां तक कि छायावादी कवियों ने जन रुचि को केन्द्र में रखकर कवितायें लिखी।

इसी समय "तारसप्तक" का प्रकाशन हुआ। "तारसप्तक" में सकलित सात में से पांच कवि कम्युनिस्ट थे, पर वे इसलिये वहां थे क्योंकि नयी चिंता दृष्टि की शुरुआत उन्ही के पास थी। वे ही जनभाषा में जनकथानक लिख रहे थे। संभव न था कि अज्ञेय नये काव्य आन्दोलन के अगुआ उन्हें छोड़ कर बनते। उन्होंने प्रगतिवादी कवियों को साथ लेकर उस आन्दोलन को तोडना चाहा। रामविलास शर्मा ने लिखा था कि नयी कविता का आरम्भ तारसप्तक से जोडना गलत है, उन्हीं के शब्दों में 'सन् १९३८ में रूपाभ के प्रकाशन के साथ शुरु होने वाली नयी कविता प्रगतिशील कविता है, जो मार्क्सवाद से प्रभावित है यथार्थवादी रुझान जिसमें प्रबल है जिसमें कुण्ठा और अतृप्ति से संघर्ष

करने की आकांक्षा है। सन् १९४७ मे प्रतीक, के प्रकाशन से शुरू होने वाली नयी कविता प्रयोगवादी कविता है जो समाजपरकता और प्रगतिशीलता का विरोध करती है जो कुण्ठा और घुटन के संघर्ष को आवश्यक न मानकर उन्हें जीवन मूल्यो के रूप में स्वीकार करती है। सन् १९५४ मे नयी कविता के प्रकाशन से शुरू होने वाली नयी कविता अस्तित्ववादी कविता है जोकि छायावादी शिशु आस्था के विरुद्ध व्यक्तिनिष्ठ विवेक पर बल देती है, जो मानव को लघुमानव बनाकर उसकी विवशता और पराजय के भोगने को कवि की परम उपलब्धि मानती है। सन् १९५८ में कृति के प्रकाशन से शुरू होने वाली नयी कविता क्रमश उस पराजित पीढ़ी की कविता बनती जाती है जो व्यक्तिनिष्ठ मूल्यो के बदले मूल्यहीनता या झण्डा लेकर आगे बढती है। भूखी पीढ़ी, नगी पीढ़ी, अकविता, ताजी कविता की अनेक संक्षिप्त अर्धविक्षिप्त पीढियां इसी मूल्यहीनता के झण्डे के नीचे एक दूसरे को ललकारती है। इस ललकारने की क्रिया के बावजूद इन सब मे आतरिक सगति है क्यो कि वे सभी साहित्य और राजनीति के प्रगतिशील तत्वो को अस्वीकार करती हैं—नयी कविता का आरम्भ न तार सप्तक से हुआ, न तारसप्तक तक वह सीमित रही" (आलोचना ४४ पृ ७५ लेख नन्दकिशोर नवल)।

जाहिर है कि प्रेमचन्द, यशपाल, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, रागेय राघव और रामविलास शर्मा—कहानी, उपन्यासकार और कविताओ के जरिये जिस यथार्थवादी रुझान को केन्द्र में रखकर रचना कर रहे थे, उसकी खोज दूसरे तीसरे दशक से ही की जाने लगी थी। चौथे दशक में तो वे शक्तिशाली रचनाप्रवृति का रूप ले चुकी थी। प्रगतिशील कविता का आन्दोलन विकास की दृष्टि से तीन चरणो मे विभक्त है। पहला चरण आजादी पूर्व काव्य उभार का है। इस उभार मे कई तरह के कवि सक्रिय थे। जैसे छायावादोत्तर रोमानी कवि, प्रगतिशील, राष्ट्रीय काव्यधारा के कवि आदि। कवियो मे निराला, पन्त (छायावादी), बच्चन, नरेंद्र शर्मा, अचल, आरसी प्रसाद, भगवती चरण (रोमानी) नागार्जुन, केदार, त्रिलोचन, रागेय राघव, शील रामविलास शर्मा, सुदर्शन चक्र, शिवमगल सिंह 'सुमन' (प्रगतिशील) नवीन, दिनकर, (राष्ट्रीय काव्यधारा) की रचनायें इस दौर में साम्यवादी प्रभाव मे हैं। इन कवियो का रचनाजगत बहुत सुलझा हुआ नहीं था। वे क्रांति को समझे बिना अतिरिक्त उत्साह मे रूसी क्रांति के गीत लिखते थे, साम्यवाद का स्वागत करते थे, मानवता को परिभाषित किये बगैर दुलारते थे, उन्माद मे आकर रक्तपर्व मनाते थे। लाल निशान की प्रशसा करते थे, क्रातिकारी पार्टी मे शामिल हुये बिना क्रांति की अराजक बातें करते थे, गावो के नाम पर या तो वहां के निवासियों के भोलेपन मे झूमते थे या उनकी दीनता पर दूर से आसू

महाते थे। प्रलय, विप्लव, हुंकार, ललकार उनके प्रिय शब्द थे। विडम्बना यह कि अधिकांश कवि प्रलय और विप्लव के गीत लिखते थे और गांधी के उपवास के सामने नतमस्तक हो जाते थे।

रोमांस, उथल पुथल तथा भ्रांतियों से छनकर इस युग के रचनाकारों में बचे–त्रिलोचन, नागार्जुन, केदार, मुक्तिबोध आदि। त्रिलोचन, नागार्जुन और केदार की कवितायें सामान्य जन को ही सम्बोधित होती रहीं। त्रिलोचन की कविता में मेहनतकश सामान्यजन गांव का है। रचना में माफत वह उस आदमी को परिवेश की जानकारी देता, कार्यकर्ता की तरह तैयार करता है। त्रिलोचन का सामान्य जन क्रूरतम जटिलताओं से अनभिज्ञ नहीं है। "नगई महरा" में नगई की सादगी आसान नहीं है, वह परिवेश की सामान्यजनीन आत्मीयता से जन्मी है। यही आत्मीयता मजदूरों की एकता और संघर्ष की संभावना पैदा करती है। उसमें प्रेम, उत्साह, शांति, क्रोध और शोक की जनसंस्कारी भावनायें क्रमशः विकसित होती हैं। कवि का प्रेम औसत आदमी को सामूहिकता प्रदान करता है। तारीफ की बात यह है कि इस कवि ने अंग्रेजी के परम्परागत काव्य छंद सानेट में कथ्य की उन्मुक्तता और सहजता उपजा दी है। 'धरती' और 'दिगंत' में सपाटबयानी परस्पर विचार सूत्रों में उलझती आकर ऐतिहासिक गहराई प्राप्त करती है। अनुशासित आवेग का यह कवि हिंदी जनवादी कविता के क्षेत्र में महत्वपूर्ण है।

नागार्जुन जनवादी कविता के लोक कवि हैं। लोक मानस की राजनीति, अर्थनीति धर्मदृष्टि, लोक कथायें, मिथक और परम्परायें नागार्जुन को मालूम हैं। इसी ज्ञान के जरिये लोक कथानक के भीतर से वे यथास्थितियों को तोड़ते हैं। यथास्थिति भंजन में, पर्वत, बादल और नदियां को पात्र बना डालते हैं, निरन्तर समय की राजनीति से जुड़े रहते हैं वर्ग संघर्ष के द्वारा नागरिक धर्म निभाते हैं। सर्वहारा की ओर से शरीक होकर नागार्जुन निष्ठावान जनवाद का परिचय देते हैं। इतने संवेदनशील हैं कि सर्वहारा पर होते हुये जुल्म के विरोध में ठिठुरी काया के भीतर से फनफनाने लगते हैं। जनवादी राजनीति की ऐसी कवितायें लिखते हैं, जिन्हें गुनगुनाया जा सके। नागार्जुन की कविता के नायक मजदूर किसान हैं। शोषण से मुक्त कराने के लिये क्रान्ति के हर दौर में उनकी कविता साथ निभाती है। युगधारा 'सतरंगे पंखों वाली, 'प्यासी पथराई आंखें', संकलनों में कवि की सर्वहारा पक्षधरता जीवन के सभी क्षेत्रों में नजर आयी है। हाल में प्रकाशित कविता "ऐसा तो कभी नहीं हुआ था', (हरिजन गाथा) लोक मिथ के अन्दर से क्रांति की पृष्ठभूमि घोषित करती है।

केदारनाथ अग्रवाल की कविता का क्षेत्र भी उपरोक्त दोनों सहयोगियों की तरह गांव का ही है, साथ ही कस्बे का मजदूर भी। आरम्भ में वे प्रेम और प्रकृति

विषयक कविताओं में किंचित रोमानी रहे, पर शीघ्र ही मुख्य रुझान जनवादी हो गया। 'युग की गंगा", "लोक और आलोक', "आग का आइना" में उनकी महत्वपूर्ण प्रगतिशील रचनायें हैं। केदार ने ग्राम्य जीवन के रेखाचित्र कविता के जरिये बनाये हैं। उन्होंने समूह गीत लिखे हैं जिन्हें गांव के लोग मिलजुल कर गाते हुये अपने बदलते संस्कारों की बानगी देते हैं। "कराठो का गाना" और "कटुई का गीत" इसी तरह के समूह गीत हैं। लोक धुन पर आश्रित ये गीत किसान, मजदूरों में बदलने की शक्ति देते हैं। स्पष्ट है कि इन कवियों में अधिकांश की जमीन ग्रामीण है। ऊपर से देखने पर गावों की हालत अधिक नहीं सुधरी वस्तुतः वहां भी राजनीतिक कसमसाहट जागी है। यह कहीं कहीं वर्ग संघर्ष को मूर्त रूप भी देती है। नागार्जुन का किसान राजनीतिक समझ रखता है, केदार का किसान चौथे दशक की रोमानियत से पूरा मुक्त नहीं है। त्रिलोचन का किसान धीरे धीरे सांस्कृतिक लड़ाई की ओर है। नागार्जुन का किसान मजदूर अपेक्षाकृत अधिक समकालीन है।

स्वतंत्रता पूर्व जमी जनवादी कविता को दबाकर मध्यवर्गीय पूंजीवादी आधुनिकता को उभारते जो काव्य प्रवृत्ति आई, उसके खतरे को बारीकी से मुक्तिबोध ने पहचाना। "तारसप्तक" में जिस समय वे प्रकाशित हुये, इस खतरे को उतनी गहराई से नहीं देखा था। वे निजबद्धता और सामाजिक संघर्ष के द्वंद्व से गुजर रहे थे। बाद में जिस ढंग से "प्रतीक", 'नयी कविता" तथा द्वितीय और तृतीय सप्तकों में नयी कविता के नाम पर जन विरोधी कवियों को एकत्र किया जा रहा था और सीधे-सीधे जनवादी आंदोलन को ध्वस्त करने की मुहिम तेज की जा रही थी, मुक्तिबोध ने उस खतरे को महसूस किया और रचनात्मक उत्तर दिया। उत्तर कविता और आलोचना के दोनों क्षेत्रों में वजनदार सिद्ध हुआ, एक साहित्यिक की डायरी, नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध, नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र और 'चांद का मुंह टेढ़ा है' के प्रकाशित होते ही अज्ञेयपंथी खेमे में भगदड़ मच गई। 'राहों का अन्वेषण' क्षणवाद, लघुमानव, मुक्तचेतना, स्वायत्तता, अस्मिता की रक्षा के सिद्धांतों की पूंजीवादी प्रेरणाभूमि को मुक्तिबोध ने जिस ढंग से खोखला सिद्ध किया, उससे सातवें और आठवें दशक के कवियों को भ्रम मुक्त होने में सहायता मिली। मुक्तिबोध ने आगाह किया कि बूर्ज्वा लोकतंत्र के बहाने आयातित साम्राज्यवादी संस्कृति कितनी खतरनाक है। मुक्तिबोध का बोध और सम्बोधन क्षेत्र मध्यवर्ग था। वे इस वर्ग की आत्मदंभिक धूर्तता तथा मूल्यहीन विद्वता का असली चरित्र जान सके। उनकी जन चेतना की स्पष्ट और वैकल्पिक आकृति थी। 'ब्रह्मराक्षस", "अंधेरे में", 'एक अभूतपूर्व विद्रोही का आत्मकथन" आदि रचनाओं में फंटेसी के माध्यम से मुक्तिबोध ने सामाजिक संरचना के वर्तमान और भविष्य को

बखूबी रक्षांकित किया है। उनकी कविता ने आत्मानुभूति, वयक्तिकता, अभिव्यक्ति की आजादी और जनतन्त्र जैसी मूल्य प्रक्रियाओं को जनवादी अर्थ प्रदान किया है।

प्रगतिशील कविता के दूसरे दौर में शमशेर का कवि व्यक्तित्व रचना के क्षेत्र में काफी टेढ़े मेढ़े जटिल रास्ते से गुजरा है। वे हल्की रोमानियत और पश्चिमी आधुनिकता से लेकर प्रगतिवादी रास्तों में रुकते और रमते रहे। फ्रांस की चित्रकला और शिल्प आंदोलनों से वे प्रभावित हुये। यर्ले, लारेन्स, इलियट पाउंड, कमिंग्स, हापकिंस और डायलन टामस का रचनात्मक साक्षात्कार किया, उर्दू गजलों को आत्मसात किया। शमशेर की कविताओं का कथानक सामान्य जन की सामान्यताओं का नहीं है, रोमांस की कुछ कविताओं को छोड़कर। उन्होंने बुर्जुवा जनतन्त्र किसान, मजदूरों की आकांक्षाओं, इतिहास का भविष्य जैसे प्रसंगों को मार्क्सवादी दृष्टिकोण से चित्रात्मक शैली में बांधा, साम्यवादी जनांदोलनों की अनिवार्यता महसूस करते हुये 'य शाम है' 'काम० रूद दत्त भारद्वाज की शहादत की पहली बरसी पर'' 'चीन' हमारे दिल सुलगते हैं जैसी रचनायें लिखी। "अमन का राग" शमशेर की प्रसिद्ध जनवादी कविता है।

नयी कविता के क्षेत्र में मार्क्सवादी रुझान के साथ कवितायें, रामविलास शर्मा, नेमीचंद जैन ने भी लिखी किंतु ये बाद में आलोचना और नाटक की ओर मुड़ गये। केदारनाथ सिंह ने जन-संस्कृति को बिम्बों के माध्यम से जाना पहचाना और मध्यवर्गीय दुनिया में तैरते रहे। नरेश मेहता ने कुछ दिन मार्क्स का नाम लिया फिर वैष्णव हो गये। प्रगतिशील कविता को अपनी पहचान कायम करने में कठिनाई प्रगति विरोधी कवियों की तुलना में तथाकथित मरा जक समाजवादियों के कारण हुई। इस वर्ग के प्रतिनिधि कवि, विजय देव नारायण साही, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना आदि रहे हैं। ये 'कवि परिमल ग्रुप में वैचारिक दृष्टि से लोहिया-समर्थक थे। इनका समाजवाद कम्युनिस्ट विरोधी रहा है। इन्होंने अन्तर्राष्ट्रीयता, अनुभववादी अराजक विचारहीनता अथवा व्यक्तिवादी अमूर्तता को रचना की प्रेरक दृष्टि माना, इसलिये ये किसान मजदूरों को साम्यमूलक वैकल्पिक संघर्ष प्रदान नहीं कर सके, प्रयोगवाद से विलग घोषणाओं के बावजूद परिणति तक ये उसी भाव सत्य की दुनिया में जा मिले।

जनवादी कविता का तीसरा चरण उन रचनाओं से बनता है जो पिछली प्रगतिशील कविताओं को पृष्ठभूमि में छोड़कर आगे बढ़ती हैं। सामान्य रूप से पीछे के कवि अभी सक्रिय हैं, पर मनोगत रचना, काव्य और शिल्प को अविभाजित इकाई के रूप में देखते हुये जो कवि नये उत्साह से संघर्ष के अधिक सायन यथार्थ में संलग्न होकर बुर्जुवा शीतयुद्ध से मुक्त होने का सघन प्रयत्न

लेकर चले हैं, व अपनी स्थिति पूर्व पीढ़ी से आगे बना लेते हैं। प्रगतिशील कविता की यह पीढ़ी पिछली कमजोरियों से उबरने के प्रयास से जन्मी है। प्रयास का स्वरूप स्पष्ट करने के पहले पिछली कमजोरियों को सश्लिष्ट रूप से जानना जरूरी है। चालीस वर्षों का जनवादी लेखन अनेक उतार चढ़ावों से गुजरा। राजनीति के जितने क्षेत्रीय प्रयोग थे, सभी रचना में दिखाई देते रहे। अराजक मनोवृत्ति, सशस्त्र क्रांति तथा ससदीय क्रांति आदि सभी प्रकार के चरित्र की कवितायें लिखी गई, परिणाम हुआ कि जन चेतना की स्पष्ट आकृति नहीं बन पायी। दो परस्पर काव्य प्रवृत्तियां पूरक नहीं विरोधी जैसी लगती रही।

अपनी जवानी में जिन कवियों ने राही होने के बजाय 'राहों के अन्वेषी' कह कर आधुनिक चिंता के आगमन का नेतृत्व करने का दावा किया था, उनमें से कई श्वेत केशी होने के बावजूद अभी भी राहों का अन्वेषण (?) ही कर रहे हैं। गुमराह लोग समझते होंगे कि वे किसी न किसी दिन रास्ता मिल जाने की घोषणा करेंगे। ऐसी कल्पना काफी लुभावनी है। लेकिन हकीकत है कि उन्हें रास्ता कभी नहीं मिलेगा।

राहों के अन्वेषकों को करारा उत्तर देते हुये आज के युवा प्रगतिशील कवि यह कहने के हकदार हैं कि असली रास्ता किधर है। रास्ते की ओर इशारा करने वाले कवियों ने केवल उपदेश ही नहीं दिया, उन्होंने इसकी सच्ची सीख को रच कर भी साबित किया है। वस्तुतः, रास्ता तो पहले ही से बड़ा स्पष्ट था।

"रास्ता इधर है" में अनेक कवियों ने वे रचनायें दी हैं, जिनका सम्बन्ध सामान्यजन या कार्यकर्ता से है। कार्यकर्ता कवितायें सपाटबयानी के करीब इसलिये होती हैं कि वे सीधे या तो अशिक्षित जनता को सम्बोधित होती हैं या उसके उस सगठित वर्ग को जो जनता को यथार्थ की दुनिया में ले जाने की बेचैनी रखता है। ये कवितायें सामान्य समस्याओं और जन भाषा से बुनी होती हैं। लोक वार्ता से इनकी शक्ति अर्जित की जाती है। सकलन के पहले खण्ड में केदारनाथ अग्रवाल और नागार्जुन की कवितायें इसी तरह की हैं। ऐसे कवियों में कन्हैया, शलभ श्रीरामसिंह, मानसिंह राही, मुन्शी, इन्वार रब्बी, खगेन्द्र ठाकुर, वेणुगोपाल, पकजसिंह, अरुण कमल, आलोकधन्वा, चन्द्रभूषण आदि की भी कवितायें हैं। ये कवितायें दो तरह की हैं प्रथम वे जो जनगीतों में हैं जैसे रमेश रजक और मानसिंह राही की कवितायें। दूसरी वे जो कार्यकर्ता को सम्बोधित करती हैं, जैसे पकज सिंह, वेणुगोपाल खगेन्द्र ठाकुर की कवितायें। सकलन में ऐसी कविताओं को इसलिये अधिक स्थान दिया गया है, क्या कि रास्ते की स्पष्ट पहचान के सम्प्रेषण का कार्य अनिवार्य बन गया है।

ये कवितायें जनमानस म छिपी सच्चाई को भकजोरती ह। मसलन त्रिलोचन, की कविता "सोच समभकर चलना होगा, प्रगति नहीं लक्षण जीवन का स्थिरजीवन के खिलाफ तुफानी गतिशीलता, प्रलयकर मनुष्य की सक्रियता, का आव्हान करते हुये पवत जसा साहस प्रदान करती है। कविता सीध जनतत्र अथवा जुलूस मे शामिल मनुष्य को सम्बोधित है। नागार्जुन की कविता में तुम्हें अपना चुम्बन दूगा' में तुम कोई एक आदमी नहीं वह खेत मजदूर, भूमिदास, कारखाने का श्रमिक, नौजवान छात्र और मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी है। कविता शोषकों की मोटी मोटी चालें और फदा की याद दिलाती है, वग सगठन पर जोर देती है। कन्हैया की कविता "मेरी पार्टी", अर्थात भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी है। रचना जन भाषा म मजदूरो की एकता प्रदर्शित करती है। यह एकता हिमालयी अटलता, सिन्धु की उमगित अल्हडता और विराटता का मूतरूप है। उसकी सारवस्तु सवहारा की आस्था है। "जिन्दाबाद इन्कलाब", म दालभ श्रीरामसिंह मुक्तिसैनिको का सम्बोधित करते हैं। सामान्य जन के जलते प्रश्नों को रचना सघष मे रूपातरित करती है। यह पूंजीवादी दुनिया की अथहीन भाषा का आगाह भी करती है। वह जनता से कहना चाहती है कि सघष ही एक मात्र मुक्ति का बचा हुआ रास्ता है।

मानसिंह राही का "चल अवाम के लश्कर" मार्चिंगसाग है। क्रातिकारी गाते हैं कि क्राति, उद्देश्यो से भरी शोषितो की जन सेवा की आधी, तूफान, हलचल और बवडर का नाम है। क्रातिकारी लश्कर का मुकाम वगहीन समाज है। "हडताल का गीत" रमेश रजक का है। हडतालियो के सकल्प को घोषित करती यह कविता फौलादी साहस और भाषा प्रदान करती है, विवेक के साथ। मुशी की रचना, "राह आगे खुलेगी," जनता को साहसिक मनोबल देती है। चचन चौहान की कविता धनपुरुष का प्रतीक लोहा है, जो गलकर अर्थात् रूपातरित होकर फौलाद बन जाता है। यही स्थिति सवहारा की होती है। इकबार रब्बी, झुग्गी वालों का गीत लिखते हैं। खादी उपवास चमत्कार, वाला का पर्दाफास करती रचना कहती है कि देश उनका है जो उसे बनाते हैं। खगेन्द्र ठाकुर ने "दद का ज्योतित समन्दर" में कहा कि आदमी के दद के ऊपर महल तथा मीनारें उठी है। सामान्यजन को अक्तूबर क्राति की ज्योति मिली, जिससे उसने दुनियाँ के शोषण के खिलाफ युद्ध छेड दिया। रचना जनता को आत्मविश्वास प्रदान करती है।

वेणुगोपाल की "बात सिफ इतनी है" मे निम्न मध्य वग का तथाकथित बुद्धिजीवी सम्बोधित है। रचना कहती है कि शोषण का चरित्र अब बौद्धिक

हो गया है। वह दिखाई देन के बजाय महसूस होता है। वग योद्धा ही उसे देखने और ताडने का सकल्प लेत हैं। अशोक चक्रधर की रचना है "ठेकेदार म र लिया"। ठेकेदार के औजार हैं फावडे तसले, धुम्मुस, कुन्नाल, झाल, गुनिया, वसूली नापासूत, करनी, बाल्टी ग्रार स०बल। सभी औजार सगठित होकर तन गय ता ठेकेदार भाग गया, साधारण रूपक। इसम सगठन का परिणाम इगित है। पकज सिंह की रचना "हम इतिहास के बेटे हैं" म इतिहास की परता में सदियो से दबकर जीता मनुष्य, जो लडाकू योद्धा हो गया है अपनी ऐतिहासिक यात्रा को याद करता है। वह कहता है कि उसकी नयी ज्योति की सुगध ग्रौर आग भी इतिहास की देन है। एक तरह से यह रचना जनवादी इतिहास के प्रति आस्था पैदा करती है। "यात्रा", ग्ररुण कमल की कविता है। यात्रा उन पजाबी मजदूरो की है, जो घरबार छोडकर बगाल के कारखानो म काम करते हैं उनकी नौकरी ग्रौर छटनी का सम्बन्ध मालिक की जरूरत है गरीबो का रोजगार नही। कविता का मम है,' जहा मिले जिंदगी वही घर वही गांव।" चन्द्रभूषण की कविता "बाडा", का बाडा वह व्यवस्था है जिसम ग्रादमी पशुग्रो की तरह बन्द रहता है। सामान्यजन की ग्रोर से वह कहता है कि शोषक इतिहास ने ही गलत रास्ते से भूगोल की यात्रा की है। किन्तु अब इस यात्रा का भम टूट चुका है। कविता म पास पडोस को नये रास्ते में चलने की प्रेरणा है। सूत्र वाक्य है— यहा झोपडिया परेड के लिए तयार हैं। ग्रालोक धन्वा ने "मैं केवल एक ग्रल ग्राकार" मे नई पीढी को भूख के समाजशास्त्र पर आधारित ग्राकार देने की कोशिश की गई है।

कार्यकर्ता को सम्बोधित कविताग्रो मे कुछेक—जनता के उमडते सलाब का चित्र भी खींचती हैं। इनमें—"एक उमडता सैलाब"—मोहन श्रीवास्तव नया मोर्चा—ग्रोहय, 'इन्कलाब'—उदय प्रकाश ग्रौर 'उडान'—ऋतुराज की रचनाए हैं। मोहन की कविता में एक ग्रार सामान्यजन है, जिसने सपनो का यथाथ आकाश, सुखो की ऊषा, ऋतुए वय, सम्वत सब रचे थे किन्तु उनको भोगने का अधिकार पाया सामन्तो, अवतारो और मालिको ने। कवि चाहता है कि जनता भ्रम भग करते तिलस्मो का भजन कर उमड पडे। प्रेरक है— 'जगलो मे रास्ता खोजती चिडिया, आसमान जोडते मेघ धरती के टुकडे जोडती भू जलधारा। 'उडान मे प्रेरक है—'तार पर बठे चिडियो के बच्चे ग्रौर ग्रास पास उनके माता पिता।' बच्चे 'माता पिता से जीवन क्रियाए सीखते हैं। कवि की दृष्टि म हमारी पीढा को आकाश में उडने का उत्साह चाहिए, लेकिन यह वतमान स्वप्नों को वन्ल कर, लुटेरों की नौका डुबाकर और जनता का आजादी द्वार हो सम्भव है। रचना म जनता के जाग्रत मोच का

आह्वान है। "नया मोर्चा" मे मुक्ति सैनिकों की नव साम्राज्यवादियो के खिलाफ कार्यवाही का जिक्र है तथा "इन्कलाब" म दुनिया के मजदूरो का मिली नई एतिहासिक, सच्चाई का। कवि जानता है कि वर्ग विभाजन और संघर्ष जरूरी है। वह कहता है कि खदान, खेत, शहर, गाव तथा पिछड़े मुहल्लो से आती खबरों मे लूट, हत्या, बलात्कार, आपातकाल आदि के खिलाफ समाचार हैं जाहिर है कि जनता इन्कलाबी हो गई है।

संकलन मे दूसरे प्रकार की कवितायें शोषक व्यवस्था की खूखार अथवा कूटनीतिक हरकतो को रूपायित करती हैं। कविताओ म कही कही भविष्य की आहट भी है। साम्राज्यवादी—पूंजीवादी खतरनाक पतरो न केवल अपने देश म नही बल्कि दुनिया के किसी कोने के सामान्य जन का जीना दूभर किया है। आपातकाल, मुद्रा स्फीति, काला बाजार अथवा अणु युद्ध उसके ही विभिन्न कार्यक्रम हैं। राजीव सक्सेना की कविता "सुरंग के पार" में आपातकालीन सत्ता, पूर्ण जनतन्त्र तथा उसके बाद की तथाकथित लोक-शाही की वर्गीय एकता को व्यक्त किया गया है। नायिका ने गद्दी को बचाने के लिए जैसे आपातकाल रचा और सी० आई० ए० की प्रेरणा से लोगो को अंधी गुफाओ में डाल दिया तो उसमे उभरे जन असंतोष को नये अडियो ने अपनी ओर मोड़ा। इनमे भी वे तत्त्व छिपे हैं—जो नर संहार करते हैं। रचना मे जनशक्ति पर अटूट आस्था व्यक्त है। कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह ने प्रतीक कविता 'चबरी' मे सब तन्त्र के तथाकथित जनतन्त्र को चबरी का नाटक कहा है। विडम्बना है कि समूचा गाधीवाद मजबूरी का पर्याय हो गया है। "चबरी" एक वह जगह जहा नाटक को ध्वस्त करने का संकल्प जन्मा। वह संकल्प जो नक्सलवादी और श्रीकाकुलम से भी बड़ा समूचे देश मे फैलने के लिए उत्साहित है। विश्वनाथ त्रिपाठी की "पार्क मे खेलते हुए बच्चे और वे लोग' मे पूंजीपतियो को मानव भविष्य का हत्यारा और आतंकोत्पादक कहा गया है। सुरंगो के तहखानो के मालिक ये लोग आकाश से खेलते बच्चों की आजादी घुटन के धुए से छीनते हैं। श्रीराम तिवारी ने "वापसी" म आजादी के पिछले वर्षों के जनतन्त्र के हीरो को लोकतन्त्र के नाम पर सल्तनत सुख भोगने वाला बहुसंख्यक जनता को लुभावने नारों स भ्रम मे डालने वाली वसीयत छोड़ने वाला स्वार्थी मनुष्य कहा है। रचनाकार की मंशा है कि सर्वहारा की सत्ता ही एकमात्र जनतन्त्र की स्थापना कर सकती है। दूसरी 'वापसी" कविता मोहदत्त की है। कवि जनतन्त्र को जनता का घर कहता है। अभी वह जनता पराये घर म है, जहा धूप, अंधेरा तथा आतंक ही आतंक है। 'प्रमाण हैं—नकली जनतन्त्र के कारनामों को बताने के।" कवि को पूरा विश्वास है कि देश म अभी तक कोई परिवर्तन नहीं हुआ। उसने

लिखा, "सब कुछ बदल जाना चाहिए था, पर जरम अभी हरे हैं।" 'एक विश्वास की हत्या" कविता मे भारत भारद्वाज ने कहा कि कृत्रिम जनतत्र की पहली और दूसरी आजादी मे कोई फर्क नही। महज सत्ता परिवर्तन जन-विश्वासो की लगातार हत्या है। प्रणय रजन की कविता "वे जा आगे निकल गये" मे रचनाकार उन शक्तियो की ओर इशारा करता है, जो आगे की कतार में होने के कारण जीवन, शहर, आकाश, रग और फूलो की खुशबू के मालिक बन बैठे। वे नकाब ओढकर असली को नकली बनाते हैं। यह बात अलग है कि उनके दिन लद गये। जनता ने जो फैसले लिए है, उससे उनके षडयन्त्र का पर्दाफाश हो गया है। गोविंद श्रीवास्तव ने "वोल्गा से गगा तक" रचना मे कहा है कि पश्चिमी आणविक संस्कृति ने विकासशील देशो मे भयानक जहर घोला है। इसके कारण अनन्त जनता अपग, अपाहिज, कैंसर जसे रोगो से पीडित और महामारी की शिकार है। सूखा, बाढ, अकाल, दरिद्रता, को किसने जन्मा—इन्हीं भव्य महलों तथा ऐतिहासिक प्रासादों ने। ये मनुष्य भविष्य की हत्या के कारण हैं। जीवन की यात्रा इस माहौल मे बडी सघषमय है, किंतु रचनाकार की आस्था समाजवादी प्रकाश स्तम्भ के प्रति है, जो वोल्गा से गगा तक ज्योति देता है।

राजेश जोशी की कविता "जाडे की रात" है। कविता जाड की रात के जरिये समाज के समकालिक अतर्विरोध को उभारती है। कहती है कि बन्द कमरो गम विस्तरो में लोरिया सुनकर सोते लोग एक ओर तथा फुटपाथ मे सोते-बूढे बच्चे तथा जवान औरतें दूसरी ओर। काला अंधेरा जो महलो से चलता है, फुट पाथ के आदमी पर हमला करता है, जिससे वे रात मे बह्रा भी न सो सकें। खुशी इस बात की है कि इसी घुप्प अधेरे मे लोग अलाव से आग की चिन्गारिया तलाशने लगे हैं। "जगली मुर्गे से" मे प्रभाती नोटियाल ने व्यवस्था को जगल कहा है। जगल मे शिकारी मुर्गों को खुशी खुशी जीने नही देता। वह रोज उन्हें मारकर टाग उल्टीकर भुलाता है। वह निरतर मौत की योजनाए बनाता है। यह इसलिए हो सका कि परम्परागत इतिहास इस जगल से नहीं गुजरा। जाहिर है इतिहास में इस अधेरे की पहचान के बिना धूप की कल्पना असभव है। श्यामसुन्दर मिश्र की कविता "रक्त प्रवाही मोड" मे आग्रह है कि देश मे केवल नाटक के दृश्य बदले हैं, भटकन और अविश्वास बढा है, मानवीय त्रासदी को कामदी मे बदला गया है, आम आदमी के हित मे वस्तुत कुछ नहीं बदला। उसे यदि कुछ मिला तो आश्वासन। अलबत्ता यह सही है कि सामान्य जन सघष नये रास्ते पर चल पडा है। यही सघष निर्णायक होगा। मोहन श्रोत्रिय की कविता "नव साम्राज्यवादियो के नाम" म पश्चिमी देशो के चरित्र का खुलासा है। उन देशो को हरियाली, भविष्य, प्रसन्न बच्चे और

जनता पसन्द नही। वे स्वत त्रता और आत्म निभरता के अभाव हैं। वे चकित हैं--वियतनाम, क्यूबा, बोलविया, चिली, कम्बोडिया, बगलादेश, अगोला की जनता के सघष का देखकर, क्योकि यहा सातवें बडे की धमकी तथा उनके खतरनाक औजार व्यथ सिद्ध हुए हैं। वस्तुत यह आगाह कविता है।

मक्लन मे तीसरे प्रकार की कवितायें वे हैं, जो परिवश की जटिलता को रखांकित करती हैं। इनमे से कुछ रचनायें ग्राम परिवेश के यथाथ तथा कुछ मध्यवर्गीय मानसिक सकट को व्यक्त करती हैं। ग्राम परिवेश मे जसे धूमिल की कविता "लोह साय" तथा अन्य हैं। धूमिल ने कथ्य लिया लोहार की भट्टी का, जहा किसान मजदूरो के औजार काटा, कील, हथौडा, सडसी, छेनी गढे जाते हैं। ये हथियार बनाते है—लोहार के कुशल हाथ। उसकी चौपाल म मजदूर कहता है कि निहाई और हथौड ने दोस्ती करके घातक आक्रमण शुरू कर दिया, इसलिये हसिये की धार का तेज होना जरुरी है। यहा क्रांति का जनबोध सुनाई देता है। लीलाधर जगूडी की रचना है—"पाटा"। रचना आकाश के प्रतीक से शापितो की आजाद और साथक क्रियाशीलता की पक्षधर है। आकाश के खेत मे रात्रि काली खाद, तारे बीज, चाद हसिया, मौजूद है, जरूरत शेष है—बलो की। ताज्जुब है कि आकाश मे अधकार है—हवाई जहाज मे दौडने वालो का तथा धरती मे जा जोत नही सकत। रचना की चेतावनी है कि इन केन्द्रो मे अधिकार बदलेगा। बदलने का काम जनता करने लगी है। "अपना बधवा" मे ज्ञानेद्र पति ने गाव के बधुवा मजदूरो की दारुणा कथा का मार्मिक बयान बधवा तथा उसके मा बाप के जरिये किया है। बाप और उसके असमथ होने पर बधवा मालिक के घर को सब कुछ समझ कर काम करते है। बदले मे मालिक ने मा की इलाज के लिये पैसे मागने के कारण बधवा को पीटा। वह इसे बर्दाश्त न कर सका। वह हमले के लिय मालिक की ओर मुड पडा। *यह गाव की इतिहास की अपूव घटना थी। रचना का तक है कि मजबूरी ही सघष मे रूपा तरित हो जाती है।* वरयाम नेगी की रचना है—*"अकाल"। मजदूर के पास न खेत है और न जमीन। वह मालिक के लिये* ही जोतता और बोता है। खेत की फसल मालिक की और घास मजदूर की। यही आदत अकाल का कारण है। अकाल मे मरे मजदूर के लडके को सातवना मिल सकती है, पर उसय मुक्ति नही। यही सामयिक सच्चाई है। "फसल की गीत" में दिविक रमेश ने खेतो मे फसल के कमजोर पौधों से जनशक्ति की कल्पना की है। इन पोधो को कमजोर वही कहते हैं जो शोषक हैं। कवि का विश्वास है कि सही हवा (क्रांति का समय) आते ही पोध (किसान मजदूर) अपनी लोह एकता का जूझारू परिचय दगें। "पटाक्षेप"

रचना में केवल गोस्वामी कहते हैं कि मजदूरों की एकता का आधार भूख, ताकत का श्रम, क्रोध का शोषण है। भूख के ही कारण मजदूरों मे लोह शक्ति पैदा होती है जिससे वे आंधी बन कर निकलते हैं। उनको यह समाज शास्त्र ज्ञात होता है कि तहखानों की गोपनीयता के कारण अकाल पैदा होते हैं। वर्तमान में जो तथाकथित जनतंत्र हाजिर है वह वस्तुतः प्रचारतंत्र है। इसका लक्ष्य है—मनुष्य की अहेतुक यात्रा। कवि माहौल को बदलना चाहता है। राजकुमार सैनी की रचना "साथ साथ" का मन्तव्य है कि दुनियां मे जहां भी शोषण हो—मनुष्य चक्की पिसता हो, चाहे वे दफ्तर, फैक्ट्री, कारखाना, खदान, खेत खलियान, राजपथ जनपथ—जो भी हो, यहां का मनुष्य अगामी लड़ाई में एक होगा। उसने जो लाल झण्डा हाथ में लिया लिया है उसे फहरा कर रहेगा। इस रचना मे अटूट जन विश्वास की अभिव्यक्ति हुई है।

मध्यवर्गीय बोध और संभावना के लिहाज से केदारनाथसिंह, नीलकण्ठ, चारुमित्र, देवेन्द्र उपाध्याय, सुरेश शर्मा आदि की कवितायें है। केदारनाथ सिंह की छोटी कविता है—"पूर्वाभास"। इसमे कहा गया है कि अब रात, सुबह, दोपहर, शाम—अर्थात पूरा दिन—क्रान्ति का आभास देता है। ढहती मीनारें, सुनाई देती भ्रांति, दृष्टा की पदचाप, सड़क का जुलूस, ये सब क्रान्ति के संदेश हैं। रचना विचारात्मक है। "खण्डहर के बारे मे" रचना—नीलकण्ठ की है। इसमें समस्ती पूंजीवादी देश का ढांचा खण्डहरनुमा पुराना महल है, जिसके अन्दर दबे हुए लोगो की आवाजें गूंजती हैं गोली चाज, न्यायिक जांच, जलन मांस की गंध—बज है, मनुष्य के भविष्य को श्मशान में बदलते बारुदी ढेर हैं, जिसमें असमान कद है। खण्डहर के बाहर का आदमी अंदर जाकर कभी नहीं लौटा। यह अब की बात है कि आंखों की सच्चाई मनुष्य को उसके अन्दर धकेल ही देती है। प्रकारान्तर से कविता में जनवादी ऐतिहासिक दृष्टि विकसित करने की संकल्पबद्ध इच्छा है। यही इच्छा व्यवस्था के भीतर छिपी मौतों, कारगुजारियां और अंधकार का रहस्य समझायगी। अन्त मे आगत मुक्ति की संभावना का संकेत है। पूरी कविता सामयिक सच्चाई और ऐतिहासिक समय के द्वंद्वात्मक आत्मसंघर्ष का परिणाम है। "सन्नाटा बोलता है" कविता मे चारुमित्र कहते हैं कि दुनिया के समकालीन मौसम को युद्ध प्रेमियों ने खतरनाक बना दिया है। इस मौसम में मां की लोरी बच्चों की खुशी, मजूरों के गीत—गायब है। उनको तो अंधकार चाहिये और नागरिकों के नाम पर उल्लू। रात के अंधेरे मे पक्षियों की हत्या करता अश्वत्थामा उनका प्यार का प्रतीक है। कवि कहता है कि इन सबके होते आगे की स्थिति यह है कि सन्नाटे से ही दुनिया ने प्रकाश का नया मार्ग खोज लिया है। देवेन्द्र उपाध्याय की कविता

जनता पसन्द नहीं । व स्वतंत्रता और आत्म निर्भरता के भक्त हैं । वे घटित हैं--वियतनाम, अंगोला, बोलिविया, चिली, कम्बोडिया, बंगलादेश, अंगोला की जनता के संघर्ष का स्वरूप क्योंकि यहां मातत्रें बड़े की धमकी तथा उनके खतरनाक औजार व्यर्थ सिद्ध हुए हैं। वस्तुतः यह आगाह कविता है ।

संकलन में तीसरे प्रकार की कवितायें वे हैं, जो परिवेश की जटिलता को रेखांकित करती हैं । इनमें से कुछ रचनायें ग्राम परिवेश के यथार्थ तथा कुछ मध्यवर्गीय मानसिक संकट को व्यक्त करती हैं । ग्राम परिवेश में जैसे धूमिल की कविता "लोहे सांय" तथा अन्य हैं । धूमिल ने कथ्य लिया लोहार की भट्टी का, जहां किसान मजदूरों के औजार काटा, कील, हथौड़ा, सड़सी, छेनी गढ़े जाते हैं । ये हथियार बनाते हैं—लोहार के कुशल हाथ। उसकी चौपाल में मजदूर कहता है कि निहाई और हथौड़े ने दोस्ती करके घातक आक्रमण शुरू कर दिया, इसलिये हंसिये की धार का तेज होना जरूरी है। यहां क्रांति का जनबोध सुनाई देता है। लीलाधर जगूड़ी की रचना है—"पाठा"। रचना आकाश के प्रतीक से शोषितों की आजाद और सार्थक क्रियाशीलता की पक्षधर है। आकाश के खेत में रात्रि काली खाद, तारे बीज, चांद हंसिया, मौजूद है, जरूरत शेष है—बैला की । ताज्जुब है कि आकाश में अधिकार है—हवाई जहाज में दौड़ने वालों का तथा धरती में जो जोत नहीं सकते । रचना की चेतावनी है कि इन केन्द्रों में अधिकार बदलेगा । बदलने का काम जनता करने लगी [illegible] । "अपना बंधवा" में ज्ञानेन्द्र पति ने गांव के बंधुआ मजदूरों की दारुण व्यथा का मार्मिक बयान बंधवा तथा उसके मां बाप के जरिये किया है । बाप और उसके असमर्थ होने पर बंधवा मालिक के घर को सब कुछ समझ कर काम करते हैं । बदले में मालिक ने मां की इलाज के लिये पैसे मांगने के कारण बंधवा को पीटा । वह इसे बर्दाश्त न कर सका । वह हमले के लिये मालिक की ओर मुड़ पड़ा । यह गांव की इतिहास की अपूर्व घटना थी । रचना का तर्क है कि मजबूरी ही संघर्ष में रूपान्तरित हो जाती है । वरयाम नेगी की रचना है— "अकाल" । मजदूर के पास न खेत है और न जमीन । वह मालिक के लिये ही जोतता और बोता है । खेत की फसल मालिक की ओर घास मजदूर की । यही आदत अकाल का कारण है । अकाल में मरे मजदूर के लड़के को सान्त्वना मिल सकती है, पर उसमें मुक्ति नहीं । यही सामयिक सच्चाई है । "फसल की गीत" में दिविक रमेश ने खेतों में फसल के कमजोर पौधों से जनशक्ति की कल्पना की है । इन पौधों को कमजोर वही कहते हैं जो शोषक हैं । कवि का विश्वास है कि सही हवा (क्रांति का समय) आते ही पौध (किसान मजदूर) अपनी लोहे एकता का जुझारू परिचय देंगे । "कटाक्षेप"

रचना मे केवल गोस्वामी कहते हैं कि मजदूरो की एकता का आधार भूख, ताकत का श्रम, क्रोध का शोषण है। भूख के ही कारण मजदूरो म लोह शक्ति पैदा होती है जिससे वे आधी बन कर निकलते हैं। उनको यह समाज शास्त्र ज्ञात होता है कि तहखानो की गोपनीयता के कारण अकाल पैदा होते हैं। वतमान मे जो तथाकथित जनतत्र हाजिर है वह वस्तुत प्रचारतत्र है। इसका लक्ष्य है—मनुष्य की अहेतुक यात्रा। कवि माहोल को बदलना चाहता है। राजकुमार सैनी की रचना "साथ-साथ" का मन्तव्य है कि दुनिया मे जहा भी शोषण हो—मनुष्य चक्की पिसता हो, चाहे वे दफ्तर, फक्ट्री, कारखाना, खदान, खेत खलियान, राजपथ जनपथ—जो भी हो, वहा का मनुष्य आगामी लडाई मे एक होगा। उसने जो लाल झण्डा हाथ मे लिया लिया है उसे फहरा कर रहेगा। इस रचना में अटूट जन विश्वास की अभिव्यक्ति हुई है।

मध्यवर्गीय बोध और सभावना के लिहाज से केदारनाथसिंह नीलकण्ठ, चारुमित्र देवेन्द्र उपाध्याय, सुरेश शर्मा आदि की कवितायें है। केदारनाथ सिंह की छोटी कविता है—"पूर्वाभास"। इसमे कहा गया है कि अब रात, सुबह, दोपहर, शाम—अर्थात पूरा दिन—क्रान्ति का आभास देता है। ढहती मीनारें सुनाई देती क्रान्ति, दृष्टा की पदचाप, सडक का जुलूस, य सब क्रान्ति के सदेश हैं। रचना बिबात्मक है। "खण्डहर के बारे मे" रचना—नीलकठ की है। इसम स म ती पूजीवादी देश का ढाचा खण्डहरनुमा पुराना महल है, जिसके अन्दर दबे हुए लोगो की आवाजें गूजती हैं गाली चाज, यात्रिक जाब, जलते मास की गध—बजे हैं, मनुष्य के भविष्य को श्मशान मे बदलत बारुदी ढेर हैं, जिसमें असमान कद है। खण्डहर के बाहर का आदमी अदर जाकर कभी नही लोटा। यह अब की बात है कि आखो की सच्चाई मनुष्य को उसके अन्दर धकेल ही देती है। प्रकारान्तर से कविता मे जनवादी एतिहासिक दृष्टि विकसित करने की सकल्पबद्ध इच्छा है। यही इच्छा व्यवस्था के भीतर छिपी मौतो, कारगुजारियो और अधकार का रहस्य समझायगी। अत मे आगत मुक्ति की सभावना का सकेत है। पूरी कविता सामयिक सच्चाई और ऐतिहासिक समझ के द्वद्वात्मक आत्मसघर्ष का परिणाम हैं। "सन्नाटा बोलता है" कविता मे चारुमित्र कहते हैं कि दुनिया के समकालीक मौसम को युद्ध प्रेमियो ने खतरनाक बना दिया है। इस मौसम मे मा की लोरी, बच्चो की खुशी, मजूरो के गीत—गायब है। उनका ता अधकार चाहिय और नागरिका के नाम पर उल्लू। रात के अधर मे पक्षियो की हत्या करता अश्वत्थामा उनका प्यार का प्रतीक है। कवि कहता है कि इन सबके होने आग की स्थिति यह है कि सन्नाटे से ही दुनिया ने प्रकाश का नया माग खोज लिया है। देवेन्द्र उपाध्याय की कविता

'आदमी का दर्द' कहना चाहती है कि दर्द ही मनुष्य के आगामी संघर्ष को ताकत प्रदान करेगा। उसी की एकता संघर्ष को निर्णायक बनायगी। सुरेश शर्मा ने "निर्णायक वक्त" में लिखा कि तटस्थ तथा सन्त बुद्धिजीवियों की निरपेक्षता वस्तुत यथास्थिति का ही नाम है। व्यवस्था मे कवि को तीन तरह के लोग दीखते हैं जैसे—आतंकवादी (साम्राज्यवादी शोषक) तनावग्रस्त (नपुंसक) तथा मोर्चे के लोग। मोर्चे के लोगो को नयी ज्योति सूर्य (मार्क्स) ने दी है जिसे नष्ट करने मे पश्चिमी देश लगे रहते है। कवि की आस्था है कि मोर्चा बढ कर रहेगा—साजिश के बावजूद।

"रास्ता इधर है" में कुछ ऐसी रचनाएं भी है, जो समकालिक काव्य कर्म को परिभाषित करती हैं। ये रचनायें कवि द्वारा, कवि के लिये काव्य प्रक्रिया के संदर्भ मे हैं। कवि के आत्मालोचन, संकल्प दृष्टि और दायित्व के प्रसंग इससे जुड़े हैं। इन कविताओं के कर्ता है—केदारनाथ अग्रवाल, विजेन्द्र, मलय, जुगमन्दिर तायल, कुमार विकल और अक्षय उपाध्याय। केदारनाथ अग्रवाल ने कविता की जरूरत में कहा कि कवि सृष्टि के आर पार तक देख सकने की शक्ति वाले सूर्य की खोज करता है। वह कविता के शब्दों, प्रतीकों और बिम्बों की मार्फत उसी सूर्य को बिम्बित करता है। कविता वास्तव में सूर्य की पारदर्शी दृष्टि की ही अभिव्यक्ति है। यह सूर्य मनुष्य की निरन्तरता का नाम है। कवि की दृष्टि में कविता और आदमी एक दूसरे के पूरक हैं। अंधेरा, रात्रि, धूप, सूरज और प्रकाश जैसे शब्दों का व्यंग्यार्थ भाववादी नहीं—भौतिकवादी है। विजेन्द्र ने लिखा है—"अपने प्रिय कवि के लिये"। यह रचना कवि के *आत्म आह्वान के बहाने जन काव्य की उत्प्रेरक* है। कवि कहता है कि रेगिस्तान मे खनिकों की श्रम साध्य जिन्दगी है और उपलब्धि के नाम उनके पास क्षीण सहारे। वर्षा की फुहारों से जन्मी वनस्पति को तेज गर्मी सुखा देती है, जैसे खनिकों की जवानी सूखी हुई। अंधेरा और अग्निदाह का राज्य सर्वत्र है। जहां खनिक प्रकाश की वर्ग चेतना से उठे हैं वहीं उनको जेल यातनायें मिलीं। चिली और वियतनाम की तरह ही शोषक मालिक यहां है। खैरियत यह है कि अत्याचार के बावजूद धरती में—पक्षी, सुखबनबेर अर्थात श्रमजीवी सर्वहारा प्रसन्न हैं। वह सुरक्षा दल—देशी और आक्रमक दल—दोनों से निपट लेता है। राजस्थान का उत्तरी इलाका तो अभी आजादी का नाम भी नहीं जानता। वहां नौकरशाह भी उन पर अत्याचार करते रहते है। कवि रचनाकारों से कहता है कि बदले हुए प्रतिमानों से वहां की भाषा और संस्कारों से सरोकार रखकर ही उन्हें बदला जा सकेगा। मलय ने "रचना तम का स्वाद" में प्रतीकों की भाषा में एक ओर बुद्धिजीवियों की बहस, फुरसत के ठहाके, तथा दफ्तरिया मूल्यहीन

कमलीला पर करारा व्यंग किया है। राजनेताओं की ओर भी उसका प्रहार है क्योंकि आम आदमी के लिये यह मौसम चाहे जितना सूखा हो, उनके लिये तो सुखद है। रचनाकार इन अंतर्विरोधों से गुजरने का संघर्षपूर्ण स्वाद चखता है। यह स्वाद खतरनाक होते हुए साहस तथा जनहितकारी उद्देश्यों से जुड़े होने से मनमोहक है। यहां, सामयिक हवाओं को चीरने के लिये कवि बौद्धिक तैयारी करता है। भाषा, शब्द तथा पोस्टरों के बार बार दुहराते नाटक की ओर इंगित कर आगाह करता है तथा कविता को संघर्षजीवी मनुष्य की जीवन –क्रिया का प्रतीक बताता है। जुगमन्दिर तायल ने 'कविता का अर्थ' के जरिये कविता का कर्म बताया– दुनिया की पहचान जनसंघर्ष की संभावना का अनुमान, जन एकता का विकास, व्यक्ति के अन्तर्विरोधों पर चोट तथा मुक्ति आदि। ऐसा कवि यथास्थिति को तोड़ने की बेचैनी पैदा करता है। कविता का मुख्य कर्म बन जाता है—यथार्थ की ओर आदमी को खोजना और कविता का अन्तर मिटाना। कुमार विकल की कविता "यह सब कैसे होता है' में यह संकेत है कि आज के अनेक कवि मध्यवर्गीय संस्कारों तथा विशेषणों में फंसे हैं। वे नहीं जानते कि यहां—मछुआरे, मजदूर, किसान और बच्चे हैं। वे लारियों तथा जनगीतों से बेखबर हैं। वे शहर में फंसकर देश के बड़े भूभाग से कटे हैं। वे बिना अनुभव के गांव और किसानों की बातें करता हैं। कवि शहरों के हिंस्र पाशव चरित्र में होते रूपान्तरण को आश्चर्यजनक कहता है। यहां आकर मध्यवर्गीयता गुमराह होती है। ऊपर से आजादी रात्रि में लाशें—कितना स्पष्ट विरोधाभास है? कवि लोक जीवन की वापसी चाहता है। मां की झुर्रियों में महाकाव्य देखने वाला—गोर्की की मां' जैसा। रचना मध्यवर्गीय मानसिकता को तोड़ना चाहती है। अक्षय उपाध्याय "कविता के इर्द गिर्द" में मानते है कि कविता करना आसान कार्य नहीं है समाज में भटकता आम नागरिक का दर्द जितना जटिल और बड़ा है, कविता का कर्म भी उसी तरह। बल्कि सच्चाई यह कि दोनों एक हैं। कविता में गुफाओं कन्दराओं में छिपी अनिवार्य सच्चाई होती है। सच्ची कविता रचने के पूर्व रचनाकार की चेतना जन शक्तिजन्य साहस और घातक शक्तियों की क्रूरता के मानसिक द्वंद्व में गल गलकर लोहे की तरह कठोर हो चुकी होती है। कविता—इसी तरह गल गलकर सजीव होती नयी आकृति का स्वरूप होती है।

संकलन में एक और काव्य प्रवृत्ति है, व्यक्तियों पर लिखी गई कविताओं की जैसे—शमशेर की कविता—नजरूल के लिए, अजय तिवारी—मार्क्स के प्रति तथा श्याम कश्यप की 'शेली के लिए'। शमशेर ने यह कविता जनकवि नजरूल इस्लाम की मृत्यु (२९ अगस्त७६) के अवसर पर लिखी है। यह

वस्तुन शोक गीत है। नजरूल की आजादी के सपने तीन हिस्सा—पाक भारत बगला देश में उग गय। साम्प्रदायिक जहर ने जैसे मनुष्य का ही तीन हिस्सो म बाट दिया हो। कवि ने तीनो देशो की नागरिकता देखी और चुप रहा—जैसे विस्फोट की कारगर तैयारी म लीन रहा हो। जनवादी शोक गीतों म आसू नही होता—उनमे आसुओ से मुक्ति के सपने होते हैं। मसलनन् नजरूल के सपने ही इस कविता की प्रेरणा है। नजरूल का सपना था—समाज वादी वर्गहीन समाज। लेकिन उसके बदले साम्राज्यवाद—हीरोशिमा, नागा साकी, वियतनाम, दक्षिणअफ्रीका, लातीनी अमेरिका में नरसहार करता रहा। रचनाकार सोचता है कि शायद 'विद्रोही' और 'सर्वहारा' कविताओ का रचयिता इसलिए चुप है *क्योंकि वह निर्णायक महाकाव्य रच रहा है*। रचना एक कवि की चेतना की दूसरे द्वारा पुनरचना है। अजय तिवारी की कविता का बोध है कि मार्क्स की सजीवता उनकी लेखनी से अधिक जनता के हितो मे है। वह श्रमिको के साहस, सघर्ष और आग का तत्व है। इसी आग मे पूजीवाद जलता है। रचना का अभिप्रेत है कि मनुष्य के मूल्यो म रूपान्तरित होने के बाद ही वह (मार्क्स) जीवित होता है।

श्याम कश्यप की कविता बेटी दोली का केन्द्र मे रखकर लिखी गई है। रचना महसास कराती है कि पिता अपनी सन्तान के माध्यम से उसके विकास के साथ एक बार पुन जिंदगी जीता है। अन्तर यह होता है कि उसकी दुबारा की जिंदगी में पिता की समझ और स्वप्न मूर्त रूप लेते ह। बच्चे की प्रत्येक गति विधि मे पिता की रचना के जागरूक सरोकार होते ह। वर्तमान व्यवस्था स *क्रांतिकारी सामाजिक सरचना के बीच क्रांतिकारी चेतना के विभिन्न स्तरीय* रूपातरण बिटिया के विकास के रूप मे दिखाई पडते जाते ह। पिता की कोशिश होती है कि वह उसे ऐसा वातावरण दे, जिससे सतान अनिवार्य रूप से सर्वहारा के वर्ग चरित्र में ढल सके। श्याम कश्यप की यह कविता उन लोगो के लिए जवाब है, जो सोचते ह कि समाजवादी मूल्यो मे प्रेम और स्नेह के लिए स्थान नही है। वे देखें कि जनवादी मूल्यो पर विश्वास करती पिता की सतान का जनता के भविष्य के साथ कसे सबध जुडा होता है।

'रास्ता इधर है' की कविताओं के आधार पर सबसे महत्वपूर्ण बात जो इन कवियो के माफत सामने आई है, वह है रचनाकार का सामान्य जन से सीधा सारोकार। *युग की अनिवार्य चिंताधारा, मार्क्सवाद की जीवन दृष्टि को* अपनाकर लिखने वाला की सख्या मे गुणात्मक विस्तार आया है। हर गली, चौराहे शहर और गाव में रहते ये कवि अपने परिवेश क एतिहासिक अनुभवो का व्यापक और मानवीय जन इतिहास से जोडकर रचना की विश्वसनीय जमीन की पहचान दे रहे हैं।

अनेक रचनाओं में गुरिल्ला चेतना का स्वर है। यह कहने में संकोच नहीं होना चाहिए कि गुरिल्ला चेतना जैसी रचनाओं में मर्म की सही पहचान नहीं दिखती इनमें मध्यवर्गीय या निम्न मध्यवर्गीय इंसानियत का बडबोलापन अक्सर झलकता है। बिना तैयारी और समाज सेवा युद्ध की घोषणा, सफलता का अतिरिक्त आशावाद, सपाट वक्तव्यता तथा अकविता जैसी अराजकता के चिह्न इन रचनाओं में मिल जाते हैं। ये रचनाएं जनता का मानसिक परिवर्तन करने की हैसियत नहीं रखती। रचनाकार विवेक, वहां अधकचरा और अधूरा है। इस संदर्भ में यह भी सही है कि कभी के गुरिल्ला कवि अब काफी धारदार और पैने हुए हैं। अपनी उग्रता को उन्होंने संवेदना का पर्याय बताया है वे अनुभव के मूल मुद्दे तक पहुंचने लगे हैं।

प्रगतिशील कवियों में व्यक्ति-केन्द्री कविताएं अपनी अलग पहचान रखने लगी हैं। शोक गीत की जिस भिन्न शैली की शुरुआत निराला ने "सरोज स्मृति" में की थी, उसका इजाफा हुआ है। बल्कि या कहें कि शमशेर की कविता इस दिशा में पूरे सामाजिक परिपेक्ष्य के साथ खड़ी है। नजरूल के बहाने युग की तस्वीर इस रचना में आकृति पाती है। 'सरोज स्मृति' में यदि कहीं रोमानियत है तो इस रचना में नहीं। वैसे रोमानियत अपने सामाजिक संदर्भ में निंदनीय नहीं, बल्कि जरूरी चीज होती है। श्याम कश्यप की कविता व्यक्तिवादी कविताओं में विशिष्ट है, इसीलिए वह जनवादी रचना क्षेत्र के लिए उल्लेखनीय है। ऐसी रचनाएं और भी कवियों ने लिखी हैं, जैसे नागार्जुन, विश्वनाथ त्रिपाठी आदि। नागार्जुन की कविता केदार जी पर है तथा डा० विश्वनाथ त्रिपाठी जी ने 'पत्नि' विषयक कविता लिखी है। ये तीनों रचनाएं गहरी संवेदनाओं से जुड़ी हैं।

मुक्तिबोध ने कविताओं के जरिये जो उत्तर दिया था उसे इधर के इन कवियों ने आगे बढ़ाया है। राजनीतिक—आर्थिक सारवस्तु पर आधारित चिंतन का सांस्कृतिक स्वरूप कविताओं के रूप में पहचाना जा सका है। अन्य रचनाएं भी राजनीतिक क्षेत्र में बहुत समय तक दिशा निर्देशक बनती रही हैं। उन्होंने यथार्थ का रचनात्मक संसार दिया है। साहित्य या कला के स्वभाव और प्रभाव के संबंध में लेनिन का कथन है कि, "कला जनता की थाती है। उसकी जड़ें मेहनतकश जनता के बीच गहरी होनी चाहिए इसी जनता द्वारा उसे समझा और प्यार किया जाना चाहिए। उसे जनता की भावनाओं, विचारों और इच्छाओं को एकजुट करना और उदार बनाना चाहिए। उसे जनता की कर्मशीलता को जगाना चाहिए। और उसमें अंदर कलात्मक प्रवृत्ति पैदा करनी चाहिए।"

प्रगतिशील लेखन की प्रेरणा के तथ्य यही हैं। कला के क्षेत्र में सारवस्तु

के रूप मे जनता के मनोजगत म आदत के रूप मे सचित मूल्यो, स्थितियो, को कच्ची सामग्री समझ वस्तु जगत के साथ द्वद्वात्मक सम्ब ध खोजकर रचनाकार निर्णायक विचारधारा के रूप म ढालता ह। यह रचना प्रक्रिया फोरी एव उन्नत दोनो प्रकार के साहित्य की होती है। यह बात अलग है कि फोरी साहित्य की रचना, प्रेषणीयता, प्रभावशीलता म जितनी त्वरा होती है, उतनी ही त्वरा उसके गौण होने म भी होती है। उ नत साहित्य लम्बे सघष से उपजने के कारण देर तक असर डालता है। जनता का प्यार दोनों को मिलता है। म समझता हू कि हि दी का आगामी प्रगतिशील लेखन इ हीं बातो को केन्द्र में रखकर आगे बढ़ता रहेगा।

राष्ट्रीय प्रगतिशील लेखक महासघ तथा इस पुस्तक का सपादक मडल सकलन मे सकलित कवियो तथा उन पत्र-पत्रिकाओ के प्रति अत्यत आभारी हैं, जहा ये रचनाए पहले प्रकाशित हो चुकी हैं। साथ ही "न्यू एज प्रिंटिग प्रेस" के उन अनेकानेक साथियो का भी, जिन्होंने इसके प्रकाशन मे आयोजको से भी बहुत अधिक दिलचस्पी और सक्रियता दिखायी। कई कवियो की रचनाए बार-बार मागने पर भी हमे प्राप्त नहीं हुई। इसी तरह कुछ कवियो की जो कविताए हम देना चाहते थे, वे कुछ तो उपलब्ध न हो पाने के कारण और कुछ लबाई और अपनी सीमाओ के कारण भी हम नहीं ले सके। लेकिन फिर भी सकलन को भरसक प्रतिनिधि सकलन बनाने का प्रयास किया गया है। अन्त मे, सभी कवि-मित्रो और सहयोगियो के प्रति हमारी ओर से एक बार और विनम्र आभार !!

☐ सपादक मडल

☐ राष्ट्रीय प्रगतिशील लेखक महासघ